पुस्तकालय

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

वर्ग संख्या ....   आगत संख्या..........

पुस्तक विवरण की तिथि नीचे अंकित है। इस तिथि सहित ३० वें दिन यह पुस्तक पुस्तकालय में वापस आ जानी चाहिए। अन्यथा ५० पैसे प्रति दिन के हिसाब से विलम्ब दण्ड लगेगा।

ओ३म्

मन्त्र-योग

चतुर्थ भाग

प्रभु आश्रित

प्रकाशक—

सेठ चिमनदास हरिराम

रायपुर (मध्य प्रदेश)

आश्वनि सम्बत् २०१८

दिनांक २४ सितम्बर, १९६१

मुद्रक—

वीरेन्द्र कुमार अग्रवाल

नवजीवन प्रेस

चन्दौसी (उत्तर प्रदेश)

ऋग् | ॥ ओ३म् ॥ | यजु

उतिष्ठ प्रेहि प्र दवौकः कृणुष्व सलिले सधस्थे ॥
अथर्व १८-३-८ (पूर्वार्द्ध)

[हे पुरुष ! उठ ! आगे बढ़ ! शीघ्रता से आगे बढ़ !
जल के समान शान्त परम शरण उस प्रभु को
अपना निवासस्थान बना।]

मन्त्र-योग

चतुर्थ भाग

लेखक—
वन्दनीय महात्मा प्रभु आश्रित स्वामी जी महाराज

प्रकाशक—
सेठ चिमनदास हरिराम बैंकर्स
३/३२१ बैजनाथ पाड़ा, रायपुर (मध्य प्रदेश)
प्राप्ति स्थान—
गणपति ब्रादर्स द्वारा जवाहर ग्लास कम्पनी
कुतुब रोड, दिल्ली—६
प्रथमावृत्ति १०००] भाद्रपद २०१५ [मूल्य १) रु०

अथर्व | साम

धन्यवाद

प्रकाशक महोदय श्री स्वामी सन्तोषानन्द जी के भ्राता हैं। आप ने धर्म भाव से प्रेरित होकर इस पुस्तक के प्रकाशन का भार अपने ऊपर लिया; प्रभुदेव आप के इन शुभ विचारों को बनाए रखें ताकि वह इससे भी अधिक उत्कृष्ट उपकार के कार्य कर सकें। हम आप का आभार प्रगट करते हैं।

सत्य भूषण आचार्य
सम्पादक

नवजीवन प्रेस, चन्दौसी में मुद्रित।

विषय—सूची

* ओ३म् *

प्राक्कथन

वर्चसा माँ पितरः सोम्यासो अञ्जन्त देवा मधुना घृतेन।
चक्षुसा मा प्रतरं तारयन्तो जरसे मा जरदष्टिं वर्धन्तु ॥

अ० १८।३।१०

भा० ब्रह्मानन्द रस का पान कराने हारे पिता आदि वृद्धजन मुझको ब्रह्म वर्चस से युक्त करें और विद्या प्रदाता गुरु जन मुझे मधुर ज्ञानमय प्रकाश से प्रकाशित करें। साक्षात दर्शन करने के लिये बहुत उत्कृष्ट रीति से मुझको संसार-यात्रा के पार पहुँचाते हुए वे वृद्धजन वृद्ध अवस्था तक पहुँचने वाले मुझको बढ़ावें।

मंत्र योग चतुर्थ भाग के संपादन का सौभाग्य पुनः विशाल हृदय गुरुवर श्री महात्मा प्रभु आश्रित जी महाराज की कृपा से मुझे प्राप्त हुआ। संपादन से पूर्व दो बार मुझे पुस्तक की पाण्डु लिपि पढ़ने का अवसर मिला। कई एक बातों ने तो मेरे हृदय में स्वतः अपना निवास स्थान बना लिया। बहुत सी बातें और शैली मुझे नूतन प्रतीत हुई, सच मुच मंत्र योग पर जहाँ तक मेरा ज्ञान है, इतने विशाल काय पुस्तक लिखने का विचार श्री महात्मा जी को ही आया जिस कारण कई लोगों ने तो यह समझा कि मंत्र योग योग नहीं है इसे योग का नाम देना **Misnomer** अनुप युक्त है।

परीक्षण और अनुभव से यह बात सिद्ध हो चुकी है कि मंत्र योग की क्रियाएं सर्वप्रिय हो रही हैं। सच पूछें तो योग के नाम से लोग घबराते थे। राज योग के यम नियमों का पालन और हठ योग की क्रियाओं से कृष शरीर का होजाना और प्राणायाम में थोड़ी सी अवहेलना होजाने से भौतिक तथा मानसिक हानि की संभावना से ६६ प्रतिशत गृहस्थी तो योग के नजदीक भी भटकना नहीं चाहते। लेखक महोदय ने बड़ी उदारता से छोटी बड़ी सब क्रियाएं जो उनके अपने अनुभव में आईं बिना कमो कास्त अर्थात् निःशेष इन चारों भागों में वर्णित कर दी हैं।

चतुर्थ भाग की कई क्रियाएं तो ऐसी हैं जो श्री महाराज जी कराते रहे परन्तु पहले किसी पुस्तक में नहीं आ सकीं और बहुत सी तो नई है। भस्त्रका प्राणायाम और भ्रामरी प्राणायाम अपने अन्दर अलौकिक लाभ रखते हैं, उनके करने में कोई हानि नहीं। इतनी बात अवश्य ध्यान रखनी है कि योग की किसी क्रिया में हठ नहीं करना शनैः शनैः बढ़ाना और च्योंटि की गति और सेकिंडों के माप से बढ़ाना चाहिए "सहिज पके सो मीठा होए' समय तो लगता है परन्तु फल स्वादिष्ट होता है दाम भी कुछ नहीं लगते, क्रियाएं भी सुगम हैं! अस्तु। इस चतुर्थ भाग को ११ प्रकाशों में बांटा गया है। हर एक प्रकाश के अन्दर अपनी झलक निराली है। उस ज्योति की पुष्टि में पातंजल योग दर्शन और ब्रह्म सम्बन्धी प्रमाणिक ग्रन्थ माण्डूकोपनिषद के प्रमाण दिए गए हैं और उन पर बहुत सरल सुखद और सुग्राही प्रकाश डाला गया है।

प्राणायाम सम्बन्धी दूसरे "प्रकाश' में उन सब सावधानियों का वर्णन है जिन पर सफलता के लिये ध्यान रखना आवश्यक है।

संयम संबंधी पांचवें प्रकाश में बड़ी उत्तम और सरल विधियों से अपने दोषों पर विजय पाना, दूसरे के दोषों को देखने के स्वभाव से विमुक्त होना, दिव्य शब्दों का श्रवण, निन्दा, ईर्ष्या और घृणा से ऊंचा उठना इत्यादि सहिल विधियाँ क्रिया में लाकर जीवन को सुवासित बनाने के लिये अति पर्याप्त हैं।

एक संस्कारी बालक के अन्दर जिज्ञासा प्रभु प्राप्ति के लिये बड़े सुन्दर और रोचक रूप से जाग्रत की गई है। परमेश्वर की प्रतीति कैसे होती हैं, कै प्रकार के योग और समाधियां हैं और उनमें क्या क्या भेद हैं। विषद सरल व्याख्या से समझाया गया है।

माण्डूकोपनिषद में वर्णित अ, उ, म् की उपासना का क्या भाव है, कैसे करनी चाहिए, "तज्जपस्य तदर्थ भावनम" का क्या भाव है, अर्थ का क्या अभिप्राय है क्या Interpretation (अथवा उल्था) अभिप्रेत है या वह पदार्थ (Object) जिसकी ओर वह शब्द संकेत करता है। यदि पदार्थ है तो उसका चिन्तन कैसे करना चाहिए। सचमुच इसका विस्तार एक त्यागी, तपस्वी प्रभु भक्त ही कर सकता है।

कहां तक पुस्तक की सराहना करें 'मुश्ते नमूना अज़ खरवारे"

साधक पाठक स्वयं पढ़कर ही इसका आनन्द ले सकते हैं और इन विचारों का समर्थन करने पर विवश होंगे, ऐसा हमारा निश्चय है।

अन्तिम प्रकाश में तो सचमुच प्रभूत प्रकाश मानवी शरीर पर उसके कर्तव्य पर और प्रभु प्राप्ति के अधिकार पर और सफलता पर एक धारा प्रवाह सरल कविता का श्रोत बहा दिया है।

श्री महाराज जी की पुस्तक तो प्रश्न उत्तर के रूप में थी परन्तु संपादन के समय श्री महाराज जी को यह प्रार्थना की गई कि इस पुस्तक का सम्बन्ध तृतीय भाग के साथ होना चाहिए क्यों कि कई बार तृतीय भग का हवाला देना पड़ा है, प्रश्नोत्तर की बजाय गुरु और शिष्य का संवाद का रूप दे दिया जावे तो अच्छा होगा, यह ठीक है कि यह प्रश्न और उत्तर श्री महाराज जी के अपने दिमाग की उपज है परन्तु यह नहीं कह सकते कि उनके शिष्य इन प्रश्नों के करने की अथवा प्रश्नोत्तर में आनन्द लेने का अनुभव नहीं कर सकते। श्री महाराज जी ने उदारता से स्वीकृति प्रदान की और पुस्तक को गुरु शिष्य के संवाद का रूप दिया गया ताकि तृतीय भाग के साथ इसका संबन्ध भली प्रकार जुड़ सके।

अन्त में हम प्रभु प्रेमियों, गायत्री उपासकों और आत्म उन्नति के अभिलाषियों को आग्रह पूर्वक प्रार्थना करेंगे कि वह पुस्तक की आद्योपान्त बड़े ध्यान से पढ़ें और उन क्रियाओं को आचरण में लाकर अपने जीवन को समुन्नत बनाने का सफल प्रयास करें, भगवान हम सब की यह पवित्र कामना जो प्राक्कथन में अथर्व वेद के मंत्र में दी गई है, पूर्ण करें।

सत्यभूषण आचार्य
अधिष्ठाता
वैदिक भक्ति साधन आश्रम
रोहतक

तपोवन, (देहरादून)
७ सितम्बर १९६१ ई०

❀ ओ३म् ❀

ओ३म् भूर्भुवः स्वः । तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य
धीमहि । धियो योनः प्रचोदयात् ॥

ओ३म् विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परासुव ।
यद्भद्रं तन्न आसुव ॥
य० ३०, ३ ॥

मंत्र योग चतुर्थ भाग

भूमिका

मन्त्रयोग लिखने और साधना क्रियात्मक रूप में आरंभ कराने की क्या आवश्यकता थी, इसके सम्बन्ध में मन्त्र योग प्रथम, द्वितीय तथा तृतीय भाग में विस्तार से लिखा जा चुका है। ज्यों ज्यों कहीं साधना शिविर लगाया जाता है त्यों त्यों गायत्री मन्त्र के सम्बन्ध में समय समय पर नूतन प्रेरणा मिलती हैं। सामान्य स्थूल और विशेष सूक्ष्म विधियां अपने सोच विचार से प्राप्त नहीं हुईं, इसमें मेरी अपनी बुद्धि, चिन्तन, खोज तथा योग्यता का लेश मात्र भी दखल नहीं है। बार बार सोचने पर कुछ प्राप्त नहीं होता, उलझन भी नहीं सुलझतीं, सवितः देव गुप्त प्रेरक भगवान् भजन ध्यान समय में समय समय पर स्वयं प्रेरणा देते हैं जिसका चिन्ह यह होता है कि ध्यान समय मेरे अन्दर वह विधि अनायास प्रारंभ हो जाती है और मैं उसी में तल्लीन होकर देख रहा होता हूँ। प्रर्याप्त समय समय तक वह विधि होते रहने के

बाद स्वयं समाप्त हो जाती है और मेरी व्युथान अवस्था होजाती है। तब मैं उसे अपनी दैनन्दिनी (Diary) में "प्रभु की दात" दृश्य रूप में लिख लेता हूँ, फिर आगे कुछ दिन उसी का अभ्यास करता हूँ।

जब वह विधि मुझे हस्तगत होजाती है, लाभ फल उसका सामने आजाता है तब उसका प्रचार अथवा शिविर में अभ्यासियों से क्रिया कराता और बताता हूँ और कई विधियाँ ऐसी हैं जो मैं भी निरन्तर परिपक्व होने के लिए स्वयं करता रहता हूँ।

इसी प्रकार से तीन भाग बारी बारी से लिखने पड़े। तीसरा भाग १९५७ में छपा। उसके बाद जो जो अनुभव हुए, क्रिया तो कराता रहा परन्तु पुस्तक बद्ध नहीं कर सका था। अब आज ७–१०–६० शुक्रवार कृष्ण पक्ष तीज आश्विन मिति २२, सम्वत् २०१७ यज्ञ भवन जवाहर नगर दिल्ली व्रत अदर्शन मौन में बैठे लिखना आरम्भ कर रहा हूँ।

यह चौथा भाग ७-१०-६० से आरंभ होकर आज २७-७-६१, गुरू पूर्णिमा बृहस्पतवार को पूर्ण कर सका हूं, कारण एकान्त मौन बैठने का समय न मिल सका।

मोहन आश्रम हरिद्वार में जनवरी १९६१ में कई दिन व्रत के मिले उनमें थोड़ा लिख पाया। अब तपोवन देहरादून में १३–७-६१ प्रतिपदा शुक्ल पक्ष से ६० दिन के लिए अदर्शन मौन व्रत किया तब इसे पूरा कर सकने का पर्याप्त समय मिल सका। आज गुरु पूर्णिमा का पवित्र दिवस है, पूज्य गुरु जनों के प्रताप से आशीर्वाद के फल स्वरूप यह पुस्तक लिख सका हूं। अपने सब महापुरुष गुरुजनों के चरणों में बारम्बार कृतज्ञता के रूप में नमस्कार करता

हूं कि ऐसे अपने महाराजों की छत्र छाया और दया दृष्टि सदा मुझ पर बनी रहे।

प्रभु कृपा से सब विद्वान् मुझ पर दया दृष्टि बनाए रखते हैं। मेरी कई एक भूलों को जानकर भी वह सब महानुभाव मुझे क्षम्य समझते हैं। वे मेरी विद्या की न्यूनता और मेरे हृदय के सद्भावों का जानते हैं। मेरे शुद्ध भावों के कारण वह मुझे क्षम्य समझते हैं।

भक्ति मन्त्र के द्वारा होती है। भक्ति योग और मन्त्र योग एक ही चीज़ हैं। शास्त्रकारों को ऐसा ही मैंने समझा है।

इस पुस्तक में माण्डूकोपनिषत् रचित पूज्य स्वामी ब्रह्ममुनि जी महाराज की असल पुस्तक "उपनिषद् सुधा सार" को पाठक देख कर अधिक लाभ उठा सकते हैं।

तपोवन देहरादून
२७—७ ६१

प्रभु आश्रित

॥ ओ३म् ॥

प्रार्थना

ओ३म् ऊर्ध्वो नः पाह्यंहसो निकुतुना विश्वं समत्रिणं दह।

ऋ० म० १, सू० ३६, मं० १४॥

प्रभु देव! "पाहि पाहि" मेरी रक्षा करो, मेरी रक्षा करो! सर्वोपरि विराजमान् प्रभो! (नि पाहि अंहसः) अविद्या आदि महापाप से (नितरां पाहि) सदैव अलग रखो! निरन्तर मेरी रक्षा करो! (केतुना) विज्ञान से, विविध विद्या दान से। प्रभो! अनेक बार आप मेरी रक्षा करते हो। जन्म काल से ही आप मेरी रक्षा करते आए हो परन्तु वह रक्षा तत्कालीन वचाओ कर देती है, सदा के लिए नहीं करती। कुसंस्कार फ़िर फिर जाग आते हैं, फ़िर आप रक्षा कर देते हो।

परन्तु नाथ। मैं तो इससे दीन बना रहता हूं, यद्यपि आप प्रभु अपने स्वामी से प्रार्थना करने में कोई दीनता नहीं आप के सामने तो मुझे सदा दीनता से ही पुकार करनी है! फिर भी प्रभु देव! मैं आप का आश्रित हूं। आप परम पुनीत हो, दयालु और सर्व शक्तिमान हो! आप मुझे अपना विज्ञान देकर—यह ज्ञान तो मुझे रहता है कि यह पाप वृत्ति शत्रु है परन्तु विज्ञान न होने से मैं उसे बल नहीं दिखा सकता जैसे पूर्व काल के ऋषि मुनि पाप वृत्ति से कड़क कर वोल देते थे, धमका देते थे।

पोपेहि मनस्पाप किमशस्तानि शंससि ।
परेहि न त्वा कामये वृक्षान् वनानि सं चर गृहेषु गोषुमे मनः ।।

अथर्व ६-४५-१।।

अरे पाप शत्रु ! दूर हट जा, परे हट जा ! भाग जा हमारे समीप से । मुझे तुम्हारी जरूरत नहीं, मुझे इच्छा नहीं तुम्हें पास रखने की ········इसलिये प्रभु देव ! कृपा करो, आप उत्कृष्ट (उर्ध्व) हो । सब से उत्कृष्ट हो । मुझे जो आपने अपनी अपार दया से यहां तक पहुँचाया है, एक गरीब बेकस, और अनाथ अपढ़, असमर्थ के ऊपर इतनी दया की है ! शारीरिक, मानसिक बौद्धिक और आत्मिक उत्थान किया है, कितने दुर्गुण, अवगुणों से जन्म से बचाए रखा है ! और कितने अवगुण विनष्ट कर दिए हैं और कितनों के सन्मुख आने पर उनको मार भगाते हो ! जनता का मुझे प्रेम पात्र बनाते हो । आदर सन्मान की दृष्टि से उनमें रमण कराते हो । इस मेरी ऊर्ध्व अवस्था की रक्षा करो । (ऊर्ध्वो नः माहि) । कि यह क्षुद्र वृतियां, निकृष्ट वासनाएं तेरे प्रदान किए उच्च आसन से मुझे गिरा न दें । तो प्रभु देव ! अपने नाम की लाज रख ! तू मेरा प्रभु है और मैं तेरा आश्रित हूँ (विश्वम्) आप जैसे समस्त संसार का नित्य पालन करते हो, मेरे काम, क्रोध, लोभ मोह, अहंकार आदि सब शत्रुओं, रिपुओं (अत्रिणं संदह) को अच्छे प्रकार जला दो । सम्यक् भस्मी भूत कर दो । ओ मेरे प्रभो ! (अहंसः निपाहि) पाहि ! पाहि ! मेरा हृदय रमणीक स्थान बन जाये ! आपके सदा निवास का स्थान बन जाए ।

पशु, पक्षी, मनुष्य भी वहां ही डेरा लगाते हैं जहां उनको

रमण करने का क्षेत्र मिलता है। फिर कैसे अपवित्र हृदय में आप वास करो ? इसलिये प्रभो ! जहां आप रमण करते हो वहाँ ही अपना सर्व ज्ञान और सर्व आनन्द बखेरते हो। आप परम पुनीत सर्वशक्तिमान परम दयालु प्रभु हो ! मेरे प्रभु हो और मैं आप का आश्रित महाअपवित्र कायर, भीरू और कठोर हृदय यदि रह जाऊं तो यह आपके नाम को शोभा नहीं देगा। यह जचता नहीं कि प्रभु तो परम पवित्र हों और प्रभु का आश्रित अपवित्र महा अपवित्र रहे ! प्रभु तो सर्वशक्तिमान हो और प्रभु का आश्रित भीरू कायर रहे ! प्रभु तो परम दयालु हो और प्रभु का आश्रित कठोर हृदय रहे।

इसलिए मैं आप का आश्रित पुकार करता हूँ—

सोम ! रारध्निनो हृदि गावो न यव सेष्वा।

मर्य इवस्व ओक्ये ॥ (आर्याभिविनय मंत्र ३७।!

हे सोम ! सौम्य ! सौख्य प्रदेश्वर ! आप कृपा करके हमारे हृदय में यथावत रमण करो ! जैसे सूर्य की किरण, विद्वानों का मन और गाय पशु अपने अपने विषय और घासादि में रमण करते हैं वा जैसे (मर्यइवस्व ओक्ये) मनुष्य अपने घर में रमण करता है, वैसे ही आप सदा स्वप्रकाश युक्त हमारे हृदय (आत्मा) में रमण कीजिये, जिससे हमको यथार्थ सर्व ज्ञान और आनन्द हो।

रमो; रमो; अभिराम !

जेसे गौवें रमें यववन में

मानुष रमे निज सौख्य सदन में

ऐसे प्रिय ! तुम मेरे मन में
करो अभि विश्राम— चमूपति

प्रभु आश्रित

भक्त के भाव कविता में

कल्याण इस मेरे जीवन का, भगवान् न जाने कब होगा, भगवान् न जाने कब होगा ।

जिस से भव भ्रान्ति मिटा करती, वह ज्ञान न जाने कब होगा । वह ज्ञान न जाने कब होगा ।।१।।

जिससे निज दोष दिखा करते, पापों और अपराधों से डरते । उस सद् विवेक का मानव में, सन्मान न जाने कब होगा ।।२।।

अच्छे दिन बीते जाते हैं, गुरुजन वहुविध समझाते हैं । भोगस्थल से योग स्थल में, प्रस्थान न जाने कब होगा । प्रस्थान न जाने कब होगा ।।३।।

॥ ओ३म् ॥

गायत्री महिमा

गायत्री महिमा वह करे बखान। जिस की बुध्दि हो महान ॥१॥
मन्त्रों में है मन्त्र गायत्री। दूसरा नाम इसका सावित्री ॥२॥
सावित्री प्रभु की शक्ति है। देती भुक्ति मुक्ति है ॥३॥
सिमरन प्रभु का इससे करो। दुःख दर्द और सन्ताप हरो ॥४॥
आयु, प्राण और प्रजा। पशु, कीर्ति, सुख सम्पदा ॥५॥
सम्पद् वह जो बरकत दे। जीवन में वह हरकत दे ॥६॥
ब्रह्म वर्चस है उत्तम धन। मिले कहीं नहीं करो यतन ॥७॥
गायत्री, यज्ञ प्रदान करे। विषयों के उत्पात हरे ॥८॥
संसारिक सुख सब पाओगे। गायत्री गर ध्याओगे ॥९॥
मैं जो लोक परलोक के। सुख आनन्द सदा बखशे ॥१०॥
गायत्री दोनों करती है। सब संकट दुःखको हरती है ॥११॥
लौकिक सुख प्रदान कर। पहुंचाती फिर प्रभू के दर ॥१२॥
वाह वाह क्या अजब यह मन्त्र है। मन्त्र क्या, अलौकिक यज्ञ है ॥१३॥
भक्ति का यह इकला मन्त्र। जहां काम न आवे यन्त्र मन्त्र ॥१४॥
वैद्य आदि सब हार जाएं। निराश हो सब बीमार जांए ॥१५॥
बचने कीं न आशा हो। चारों ओर निराशा हो ॥१६॥
आश्रय इसका गर लेवें। विपदाएं लीन तुरन्त होवें ॥१७॥
सिद्धि अद्भुत प्रदान करे। बुद्धि भी हैरान रहे ॥१८॥
मन्त्र योग से सिद्ध करो। पीड़ा बीड़ा सब हरो ॥१९॥
कैसा उत्तम मन्त्र है। जादू है कि यन्त्र है ? ॥२०॥

ओ३म् भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि

धियो यो नः प्रचोदयात् ॥



महात्मा प्रभु आश्रित स्वामी जी महाराज

प्रथम प्रकाश

जानना, मानना, समझना, करना

सत्य भूषण—भगवन् जब गायत्री के उपासक को सर्व प्रथम यह जानना आवश्यक है कि इस मन्त्र की सब मन्त्रों से जब अधिक महानता है और यह एक ही मन्त्र कर्म, उपासना, ज्ञान तीनों का फल देने वाला है तो प्रश्न पैदा होता है कि इस मन्त्र में जानना किसे है ? समझना किसे है ? मानना किसे है और करना किसे है ?

प्रभू आश्रित—(क) जानना है मन्त्र के देवता सविता को जो गुप्त प्रेरक है, कर्म फल दाता, समस्त ऐश्वर्य दैवी और आसुरी अर्थात् शारीरिक और आत्मिक भागों का उत्पन्न करने वाला है, गर्भ के दुःख से विमुक्त करने वाला है और सब रिद्धि सिद्धि का दाता है। और

(ख) समझना है छन्द को। छन्द का एक अर्थ है छत्त, जैसे मकान की छत्त, ओला पाला, वर्षा आन्धी,

ताप, गरमी, सरदी आदि से रक्षा करती है ऐसे गायत्री-जिसका अर्थ है (गायते त्रायते=जो गाने वाले की रक्षा करती है), इस मन्त्र का छन्द है। केवल सावित्री मन्त्र "तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि। धियो योनः प्रचोदयात्" का ही गायत्री छन्द नहीं अपितु जिसका अर्थात् (१) ओ३म् का (२) भूर्भुवः स्वः का (३) तत्सवितु ....प्रचोदयात्—तक का-प्रत्येक का पृथक पृथक छन्द गायत्री है।

वर्षा धूप से मनुष्य छाता लेकर अपना लाभ तुरन्त रक्षा का लेता है परन्तु जिसे छाता की समझ ही न हो तो उस की रक्षा कैसे होगी? ठीक इसी प्रकार छन्द की समझ न होने से उपासकों की काम, क्रोध, लोभ आदि शत्रुओं से रक्षा नहीं हो सकती। देवता को न जानने से प्रेरणाओं का ज्ञान नहीं हो पाता।

(ग) मानना है ऋषि को। ऋषि इसका है विश्वामित्र। यह मन्त्र भी विश्व का मित्र है। उपासक की ऐसी मान्यता दृढ़ हो तो वह विश्वामित्र विश्व का मित्र बन सकता है।

विश्वामित्र नाम ऋषि का वास्तविक नाम नहीं,

यह मन्त्र के साक्षात करने वाले की उपाधि है। जो भी करेगा, वही विश्वामित्र पद प्राप्त करेगा।

(घ) करना क्या है? करना है भूः, भुवः स्वः।

बीज मात्र में प्रत्येक गृहस्थी मनुष्य भूः, भुवः, स्वः अपने हृदय में रखता है। अपने परिवार, बाल बच्चों के (भू) प्राण जीवन के लिए सब कुछ न्योछावर कर देता है, उसका अहं अपने परिवार तक सीमित होता है। (भुवः) अपने पुत्र परिवार के दुःख में दुखी हो जाता है और उसके दूर करने के लिए सम्पत्ति तक लगा देता है। (स्वः) अपने और अपने परिवार के सुखार्थ अहर्निश परिश्रम करता और कमा कर सब उन्हीं के अर्पण कर देता है।

अब इसका विकास करना है। भूर्भुवः स्वः को भूर्भुवः स्वः (पृथ्वी, अन्तरिक्ष और द्यौलोक) के प्राणियों में पहुँचना यह अपने अहं का विकास है। अपने अहं को घर की चार दीवारी से निकाल कर बिश्व के अर्पण कर देता है।

सत्य भूषण—यह तो बड़ा कठिन है?

प्रभु आश्रित—आत्मा परमात्मा का दर्शन अमर

होना, मृत्यु पर विजय पाना, उसे उलांघ जाना भी तो कोई सुगम कार्य नहीं। यह तो लक्ष्य है। धीरे धीरे साधना करते करते साधक सिद्धि को—साध्य को प्राप्त कर लेता है। गीता में आया है :—

 ३ ४ २ ५ ६
प्रयत्नाद्यतमानस्तु योगी सं शुद्धकिल्विषः।
 १ ७ १० ८ ९
अनेक जन्म संसिद्धस्ततो याति परां गतिम् ॥ ६।४५ ॥

अर्थ— १अनेक जन्मों से अन्तःकरण की शुद्धि रूप सिद्धि को प्राप्त हुआ २और ३अति प्रयत्न से ४अभ्यास करने वाला ५योगि ६संपूर्ण पापों से अच्छी प्रकार शुद्ध होकर ७उस साधन के प्रभाव से ८परम ९गति को १०प्राप्त होता है अर्थात् परमात्मा को प्राप्त होता है।

प्रिय—वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है। दिव्य विद्याओं के प्रकाश होने से देव शब्दों से वेदों का ग्रहण किया है। सब मनुष्यों को परमेश्वर (ब्रह्म) विद्या दान नहीं देता। वह कब देता है ? जब मनुष्य लोग सत्य प्रेम के साथ वेद वाणी से जगदीश्वर की स्तुति करते हैं, तब देता है और सत्या-चरण के विना सवितः देव का साक्षात भी नहीं हो सकता जो गायत्री

मंत्र का देवता है। निष्काम कर्म के विना "विश्वा मित्र" भी नहीं बन सकता। ऋग्वेद मं० ३ सू० ५४ मं० ५ में स्पष्ट आता है :—

ओ३म् को अद्धा वेद क इह प्रवोचद्देवाँ अच्छा पथ्या का समेति। दहृश्र एषामवमा सदांसि परेषु या गुह्येषु व्रतेषु ॥

भावार्थ—इस संसार में विरला ही ऐसा मनुष्य होता है कि जो परमात्मा को जान और उसकी आज्ञा के अनुकूल आचरण स्वीकार करके सत्य का उपदेश देता है, ऐसा कोई विद्वान् होता है जो इस संसार में इस लोक और परलोक का ज्ञाता होवे। (दयानन्द)

सत्य भूषण—तो भगवन्। जब प्रभु दर्शन इतना कठिन है तो जप करने का लाभ ही क्या ?

प्रभु आश्रित—देखो प्यारे ! इसलिये तो जप की विधि सिखलाई जाती है, विधि पूर्वक किया हुआ जप ही इस योग्य बनाता है। यह तो कोई भी मानव नहीं चाहता कि मैं विष्टा का कीड़ा बनूं, गधा, घोड़ा बनूं चाहे वहां अच्छा भोग भी मिल जावे। फिर जब प्रत्येक मनुष्य अच्छा जन्म, अच्छा भोग, अच्छी आयु, चाहता

है, दुखों को भी नहीं चाहता तब तो कोई न कोई शुभ कर्म करने पड़ेंगे, बिना कर्म तो अच्छा जन्म, अच्छा भोग, अच्छी आयु, अच्छे माता पिता, अच्छी संतान सुलक्षणी स्त्री स्वयं तो नहीं मिल जावेंगी। संसार में अर्बों पति गिनती के होंगे, करोड़पति उनसे अधिक, परन्तु वह भो गिनती के। सब शहरों में तो लखा पति भी नहीं पाए जाते, इसका यह भाव तो नहीं समझना चाहिए कि अगर हम अर्बा अथवा कोटि पति नहीं बन सकते तो अपनी रोटी तो आप कमा, अपना अपने बाल बच्चो और आए अतिथि, दीन पड़ोसी का पेट तो पाल सकें पराधीन तो न रहें, दर दर मांगते और ठुकराए जाते न रहें। परिश्रम करने वाला पुरुषार्थि ही एक दिन कोटि पति अर्बा पति बन सकता है। जिस तुम्हारी बुद्धि में यह शंका हो गई अथवा निराशा निरुत्साह पैदा हो गया, उसी बुद्धि को परिपक्व और निश्चायात्मक बुद्धि बनाने वाला तो यही गायत्री मत्र है जिसके जप की विधि सिखाई जाती है।

सत्य भूषण—वैराग्य के विना तो संसार छूटता नहीं, गायत्री जप क्या करेगा ?

प्रभु आश्रित—अविद्या, अज्ञान के कारण ही तो

राग द्वेष रहता है, कभी वस्तु में राग कभी व्यक्ति से द्वेष। विषयों में तो राग सब का रहता ही है। यह राग और द्वेष मनुष्य को पतन करते हैं और पापी बनाते हैं। पाप की ओर घसीट ले जाते हैं। यह अज्ञान बुद्धि ही में तो रहता है और बुद्धि में ज्ञान होने से मित्र शत्रु की पहिचान हो जाती है, अपनी आत्मा का कौन मित्र है कौन शत्रु है !

आध्यात्मिक जीवन का प्रवेशक साधन

प्रिय ! याद रखो (१) गायत्री मंत्र भक्ति का श्रेष्ठतम मंत्र है।

(२) इस मंत्र का देवता सवितः, जगत का उत्पादक भी सवितः और बुद्धि का प्रेरक भी सवितः देव है जो सत्यकर्मों में प्रेरित करता रहता है।

(३) यम नियम के पालन करने वाले गायत्री उपासक में भर्गः का स्वरूप प्रगट होता है जो समस्त पाप वासनाओं को दग्ध कर देता है। जब वासना ही जल गई तो विषयों में कैसे राग बनेगा। विषय कैसे आकर्षित करेंगे ! एक श्रेष्ठ पुरुष के सामने सिनेमा की मनादी होती है, बाजे गाजे बजा कर प्रचार करते

हैं। सिनेमा के समीप से गुजरता है वहाँ भीड़ लगी हुई होती है. बोर्डों पर उस शो के कुछ दृश्य भी दिखाए होते हैं, परन्तु उस श्रेष्ठ पुरुष को कोई भी उनकी क्रियां अपनी ओर आकर्षित नहीं कर सकती।

(४) गायत्री आध्यात्मिक जीवन का प्रवेशक साधन है।

(५) गायत्री समस्त दुःख संकटों का नाश और सर्व सुखों की प्राप्ति कराती है। वह उपासक दुःखी रहते हैं जो यम नियम के पालन के विना मौखिक जप करते हैं।

(६) गायत्री के साक्षात से ब्रह्म का साक्षात होगा।

(७) प्रभु की भक्ति से मति, शक्ति, संपत्ति (भक्ति और मुक्ति) मिलती है।

अनुष्ठान में सावधानी

अनुष्ठान काल में काम, क्रोध और लौभ वृत्ति उत्पन्न न हो पावे। जप करते समय यदि कोई कुवासना, कुवृत्ति उत्पन्न हो तो तत्काल जप छोड़ दें। पहले उस दुर्वृत्ति को दूर करें, प्रार्थना से, पश्चाताप से, रुदन से

प्राणायाम् से अथवा उन तत्कालिक विधियों से जो काम, क्रोध आदि के लिये गायत्री रहस्य और मंत्र योग द्वितीय भाग में लिखी जा चुकी हैं, क्रिया में लाकर दूर करें फिर जप करना प्रारंभ करें।

जप क्या है ?

जप एक साधन है, यदि चाकू अथवा कोई यंत्र काम करते करते खंडा (मन्द) पड़ जावे तो कर्त्ता काम छोड़कर पहले उसे सरन पर तीव्र करता है, धार निकालता है फिर काम करता है। इसी प्रकार साइकल सवार यदि मार्ग में साइकल की फूक निकल जावे, पहले वायु भरता है फिर आगे चलता है। बहते हुये जल के मार्ग में यदि कोई गढ़ा सामने आ जाता है तो पहले वह गढ़ा भरता है, समतल होने पर आगे बढ़ता है।

जप सफल क्यों नहीं होता ?

हम लोग जीवन यात्रा में आए छिद्र अथवा दोष की तरफ तो ध्यान नहीं देते और जप बढ़ाए चले जाते हैं इस लिये वह सफल नहीं होता। कोई भी दोष हो वह शक्ति को घटा देता है। किसी को सर्प ने पाऊं में ड़स

लिया तो वह विष जैसे जैसे जहां जहां से शरीर में गुज़रता है वहां वहाँ शोथ होता जाता है।

ऐसे ही समझो, चित्त में पाप वासना की स्मृति हुई तो चित्त दूषित हो गया, आगे अहंकार ने उसे ग्रहण किया तो अहंकार भी दूषित हो गया। फिर बुद्धि ने उसे निश्चय किया तो वह भी दूषित हो गई, फिर जब बुद्धि ने मन को दिया, मन ने सङ्कल्प किया तो वह भी दूषित हो गया। अब मन ने जिस इन्द्रिय को आज्ञा की कर्म करने की, वह इन्द्रिय भी दूषित हो गई। फिर जिस जिस इन्द्रिय ने उस पाप करने वाली इन्द्रिय का सहयोग किया, वह भी दूषित हो गई। ऐसे समस्त शरीर स्थूल और सूक्ष्म पाप मय हो गए। तब क्या हुआ, जप भी विफल हो गया।

सत्य भूषण—क्या रुदन अथवा पश्चाताप से भी पाप वृत्ति धुल जाती है ?

प्रभु आश्रित—हां, सुनो ! परमेश्वर स्पर्श करता है तो पवित्रता आती है। जितने मूर्तिमान पदार्थ हैं उनको जड़ देवता शुद्ध करते हैं स्पर्श द्वारा। वायु गन्दगी दुर्गन्ध को उड़ाती रहती है, जल भी गन्द को

बहा ले जाता है । पृथ्वी भी मट्टी से पवित्र करती है, सूर्य अपनी रश्मियों द्वारा मल को सुखाता है, अग्नि मल को दग्ध कर देती है । पात्र झूठा हो, अशुद्ध हो, मट्टी, भस्म से रगड़ कर शुद्ध किया जाता है । जितना मल हो उतना स्पर्श की आवश्यकता होती है । ऐसे परमेश्वर अन्तःकरण को स्पर्श करता है, तत्काल पश्चाताप और रुदन हो जाता है, इससे अन्तःकरण का मल धुलता है । हां, उस व्यक्ति का मल नहीं धुलता जो अपने मल पाप को छिपाना चाहता है । जैसे मल को कमरे में बन्द कर दिया जावे ताकि दुर्गन्ध बाहर न निकले, न उसे वायु लगती है न प्रकाश । ऐसे जो दम्भी लोग हैं जो भीतर तो पाप करते हैं परन्तु उसे ढांप रखते हैं, छिपाए रखते हैं, प्रगट नहीं करने देते, उनको परमेश्वर स्पर्श नहीं करता । बन्द कमरे में जितना छिद्र होता है उतनी वायु और प्रकाश अन्दर जा सकेगा । इसकी पुष्टि में निम्न मन्त्र साक्षी देता है :—

पवमानस्य ते पवित्रं अभ्युदन्तः ।
सखित्वं आ वृणीमहे ॥ ऋ० ९-६-१-४ ॥

भावार्थ—(पवित्रं अभि उन्दतः) हमारे पवित्र

हुए अन्तःकरण को भक्ति रस से आर्द्र करते हुए (पवमानस्यते) तुझ परम पावन के (सखित्वं) सख्य को, मित्र भाव को (वयं आवृणीमहे) हम वरण करते हैं।

सत्य भूषण—फिर जप का वैराग्य से क्या संबन्ध हुआ ?

प्रभु आश्रित—ऐसी सावधानी रख कर जप करने से निष्काम कर्म का ज्ञान होगा। तप से उपासना का, ध्यान से विवेक ज्ञान का प्रकाश होता है और विवेक से वैराग्य का ज्ञान होता है और वैराग्य के बाद आत्मा का साक्षात्कार होता है।

सत्य भूषण—काम, क्रोध आदि तो आद से मनुष्य के साथ है, फिर इन से वैराग्य कैसे ?

प्रभु आश्रित—प्यारे काम, मोह, लोभ और अहंकार तो प्रवृति मार्ग में ले जाते हैं परन्तु क्रोध निवृति मार्ग कराता है। प्रभु की इस लीला को समझना ही तो विवेक ज्ञान है। क्रोध अपनी शक्ति भी रखता है और दूसरों का भी हथियार बनता है, इसमें पाँच शक्तियां हैं। यह राज्य में रक्षा (Defence डीफेंस)

का काम करता है। अभी कराची में नहीं देखा इस सेना के सेनापति अयूब ने किस युक्ति से सब पापी अधिकारियों को शिकंजा चढ़ाकर स्वयं राज्य संभाला। सब के पाप सम्मुख करा दिए। अब ध्यान से सुनो और समझो। संसार के लोग क्रोध को काम, लोभ मोह और अहंकार के लिये सेवन करते हैं, इसलिये क्रोध भी प्रवृत्ति मार्ग में सम्मिलित हो जाता है और यदि इसी क्रोध को काम पर, लोभ पर, मोह पर और अहंकार पर चलाया जावे तो मनुष्य निष्काम, निर्लोभ, निर्मोह, निरहंकार हो जावे। क्रोध से द्वेष और घृणा उत्पन्न होता है। द्वेष तब होता है जब काम आदि के लिए हो और घृणा तब होती है जब काम आदि पर हो। यही घृणा फिर निवृति मार्ग में सहायक बनती है।

———

द्वितीय प्रकाश

प्राणायाम

सत्य भूषण—आपने मंत्र योग तृतीय भाग में यह तो लिख दिया है कि गायत्री कीर्तन तथा जप सूक्ष्म विधि से प्राणायाम जैसा लाभ होता है। हठ योग वाले तो पहले अन्न मय कोष की शुद्धि धोती नेती आदि से कराते हैं और उनका विचार है कि रक्त शुद्धि से ही चित्त शुद्धि होती है। साधारण जनता योग भी उसी को समझकर उधर बहुत ध्यान देते हैं और प्राणायाम भी कई प्रकार के सिखाते है।

प्रभु आश्रित—हमने भी जनता की रुचि प्राणायाम में देखी, वह इस लिए कि जब साधक मंत्र योग की कुछ क्रियाएं सीख कर घर जाते और करते हैं, तो लोग पूछते हैं कि क्या आप प्राणायाम सीख आए? प्राणायाम करने वाला तो योगी बन जाता है तो साधकों को चाहे वह पूर्ण शक्ति न लगा सकें तब भी उन्हें लालसा रहती है, इस लिए हमने सन १९५४

से मंत्र योग की विधि सिखाने से पहले प्राणायाम सिखाना आरंभ कर दिया जिसके लिए यह चतुर्थ भाग लिखने की आवश्यकता हुई। प्राणायाम तो विस्तार पूर्वक योग युक्ति में आ चुका है परन्तु यहां भी जो जो विधियां जैसे कराई जाती हैं लिख देना आवश्यक है और साधारण जनता के यह भी मस्तिष्क में बैठा हुआ है कि चक्र प्राणायाम से खुलते हैं और शीघ्र खुलते हैं। इस में सन्देह भी नहीं यदि प्राणायाम सिद्ध हो जावे तो चक्र खुल जाते हैं। हठ योगी क्रियाओं मुद्राओं पर बल देते हैं, यम नियम पालन की तरफ कहते तो हैं परन्तु ध्यान नहीं देते और जैसे मंत्र योग में दोषों पर विजय पाने के लिए विधियां और क्रियाएं कराई जाती हैं वे कराते नहीं और बताते भी नहीं। हम शरीर शुद्धि प्राणायाम द्वारा कराते हैं।

भस्त्रका प्राणायाम

गायत्री कीर्तन और भजन के अनन्तर सब से पहले भस्त्रका प्राणायाम की क्रिया आवश्यक है, इस से धोंकनी की भांति रेचक पूरक या उच्छ्वास प्रच्छ्वास तीन प्रकार से किया जाता है। आसन जमा रहे,

शरीर सीधा, सिर, छाती ग्रीवा सम रखकर पहले कुछ साँस लम्बे दीर्घ (Deep Breathing) की भांति खींचे और निकाले जावें, फिर जरा तीव्र करके कंठ से ध्वनि आए। ऐसा करते करते फिर फेफड़ों से ध्वनि आए। अपने आप शरीर के किसी अंग को न हिलाया जावे, प्राण का वेग अपने आप हिलाएगा। पेट बार बार पचकता और फूलता रहेगा। इसका लाभ कंठ और फेफड़े और मस्तिष्क में जो श्लेश्या फंसा हुआ है जो रक्त के संचार को रोके रखता है. शुष्क होने लग जावेगा। नाड़ियां सब शुद्ध हो जावंगी—यह है भौतिक लाभ।

(१) मूल बन्द लगाकर भस्त्रका किया जावे तो स्वप्न दोष का रोग जिनको होगा वह काफूर (दूर) हो जावेगा।

(२) आधिदैविक—लाभ यह होता है कि जब ध्यान में बैठोगे तब सांसरिक विषयों की विस्मृति रहेगी।

(३) आध्यात्मिक—लाभ यह है कि उदान के शुद्ध हो जाने पर अहंकार विनम्रता में बदल जायगा

और प्रमाद पुरुषार्थ में और कठोरता सरलता में बदल जावेगी ।

धीरे धीरे इसका अभ्यास बढ़ाना चाहिए । ग्रीष्म ऋतु में अधिक न करना चाहिए, शरद् ऋतु में न्यून से न्यून पांच मिनट तक निरन्तर भस्त्रका किया जा सके बिना श्रान्त होने के, इसलिए धीरे धीरे अभ्यास बढ़ाना चाहिए । अधिक जितनी आवश्यकता अथवा अवकाश हो । हठ योगी तो आध घण्टे तक भी ले जाते हैं परन्तु वह अति है, छोड़ देने पर साधक अभ्यासी को फिर हानि होती है । इस लिए अपने शरीर व्यवसाय, कार्य और समय का ध्यान रखते हुए स्वयं निश्चय कर लेना चाहिए कि कितना करें अधिक लोभ करने से फुफस खराब हो जाते हैं ।

उदान-अपान का बल

जब मनुष्य सच्चे हृदय अथवा मन के वेग से सेवा करना चाहता है तो उसके उदान प्राण में बड़ा बल पैदा हो जाता है चाहे वह शरीर से कितना ही कृष किया न हो और जब मन के वेग से बुरा कर्म करना चाहता है तो अपान प्राण में बल पैदा हो जाता है

चाहे कितना ही निर्बल क्यों न हो ।

सत्य भूषण—उदान की शुद्धि से केवल अहंकार की शुद्धि होगी अथवा कुछ और लाभ भी होगा ?

प्रभु आश्रित—उदान का सम्बन्ध कण्ठ से लेकर सिर तक है, और सिर में पांचों ज्ञानेन्द्रियां हैं, अतः ज्ञानेन्द्रियां भी शुद्ध होंगी । प्राणायाम तो एक ओषधि समान है और भो क्रियाएं साथ साथ करनी चाहिए ।

दूसरे के दोषों को न देखें

मनुष्य में एक महान दोष है कि उसकी दृष्टि दूसरे के दोष को तुरन्त देखती है और अपने दोष नहीं देखती । आँख ने दोष देखा, बुद्धि ने निश्चय किया वह भ्रष्ट हुई । मन में आया, वह भ्रष्ट हुआ फिर वाणी से उस व्यक्ति की चरचा की, निन्दा की । द्वेष पैदा हो गया, घृणा हो गई और चित्त में संस्कार जम गया । बार बार उसकी स्मृति होने लगी, जहां तहां अवसर मिला फिर ताजा होकर बोलने लगा ।

अहंकार अथवा स्वार्थ के कारण मनुष्य दूसरे का दोष देखता है । स्वार्थ न भी हो तो अहंकार वृत्ति से यह दोष प्रायः सबमें होता है, उसके लिए एक सुगम

उपाय है।

उपाय अथवा क्रिया

अपने किसी पाऊं के अंगूठे के नाखून में आंखें खोलकर दृष्टि जमाओ और एकाग्रता से देखते रहो। नाखून मैला हो तो उसे थूक अथवा जल, तेल अथवा रौग़न लगाकर चमका दो। धीरे धीरे उस चमक में हाथ हिलाओगे तो हाथ हिलता प्रतीत होगा। फिर और एकाग्र होंगे तो अपना रूप दिखाई पड़ेगा और धारणा पक्की करोगे तो अपना मुख मण्डल आंख, नाक, कान, गाल, डाढ़ी सब पूरे पूरे नज़र आयेंगे। जब अपना पूरा रूप दृष्टि में आ जावे तो कुछ देर तक पक्का करके आंख मूंद लो, फिर उसी नाखून में ध्यान करो तो अपनी शक्ल नज़र आवेगी। इसका खूब अभ्यास देर तक करते रहने से दृष्टि कोण ऐसा बदल जावेगा कि फिर किसी के भी दोष पर दृष्टि न जायगी अपितु जब जावेगी अपने ही दोषों पर जावेगीं।

अपने बाह्य स्वरूप को देखने की विधियां मंत्र योग तृतीय भाग में (बाह्य स्वरूप नं० ६) में लिखी जा चुकी हैं सब का अपना अपना लाभ होता है।

(१) घर में शीशे या अपने फोटो वाली शक्ल का सामने आना उसमें ध्यान जमाना—से एकाग्रता तो हो जाती है परन्तु मोह बढ़ जाता है। देखो मंत्र योग तृतीय भाग। हमज़ाद छाया और फोटो सामने आने से उस पर धारणा पक्की करने से दिल पक्का हो जाता है और उस से अपने संकल्प शक्ति से बहुत काम लिए जा सकते हैं परन्तु इसे पाओं के नाखून में देखने की विधि करने से दोष दृष्टि दूर हो जाती है, जो लाखों करोड़ों कर देने पर भी प्राप्त नहीं हो सकती। साधना का तात्पर्य तो अपना सुधार करना है। दोषों को दूर करना, दोषों पर विजय पाना ही है।

एक और विधि भी वाह्य स्वरूप देखने की है। दोनों हाथों को फैलाकर और जोड़कर मुंह को ठाँप देना चाहिए, हाथों से, और हाथों के तल से आँखों को पोला पोला दबाना चाहिए, उस में पहले प्रकाश होगा फिर अपना आकार चमकता हुआ दृष्टि आएगा। यह अभ्यास दिन को हो सकता है। जब आकार नजर आवे उसे कुछ थोड़ी देर एक दो मिनट तक तो वहां ही देखते रहें, फिर हाथ हटाकर त्रिकुटी में आंखें मूंद उसी शक्ल को देखें। ऐसा अभ्यास करने से इस स्वरूप

से अपने अन्दर प्रसन्नता और ऐसी एकाग्रता होगी कि चित्त शाँत सा हो जावेगा, कोई संकल्प विकल्प न उठेगा।

योग दर्शन विभूति पाद सूत्र २१ में आया है—

काय रूप संयमात तद ग्राह्य शक्ति स्तम्भे चत्तु: प्रकाशा संप्रयोगे उत्तरध्यानम्।

अर्थात शरीर के रूप में संयम करने से जब उस की ग्राह्य शक्ति रोक ली जाती है तब चक्षु के प्रकाश का उसके साथ संबन्ध न होने के कारण योगी अन्तर धान हो जाता है।

एक और विधि—दर्पण में केवल अपनी आंखों की पुतली में बड़ी गहरी दृष्टि से देखोगे तो अपना आकार नजर आएगा परन्तु बहुत ही छोटा होगा, उसी दर्पण में कुछ मिनट तक अपने इस छोटे आकार को अच्छी तरह से देखने का अभ्यास करो, फिर आंखें मूंद कर अपनी ही आंखों की पुतली में वही अपना आकार देखो और उसी में निमग्न हो जाओ तो योग दर्शन के विभूति पाद सूत्र २१ की शक्ति, सिद्धि अथवा विभूति प्राप्त हो जावेगी।

सावधान—यह अभ्यास अति कठिन है, इस विभूति के लोभ में हठ न करना, नहीं तो आंखों को बहुत हानि पहुंच सकती है।

पहले दूसरी विधियां परिपक्क कर लो जो सुगम हैं परन्तु पहली विधियाँ भी वही करेंगे जिनके बड़े प्रबल अध्यात्म पुण्य संस्कार होंगे यदि दर्पण में अपनी आंख पुतली में जमा न सकें तो किसी दूसरे व्यक्ति की पुतली में देखो, (उसके नितान्त समीप हो जाने और केवल आंख में आंख से देखने से यह क्रिया दर्पण से भी सुगम है अर्थात तुरंत अपना आकार ठीक नज़र आ जाता है) वहां अपना आकार ठीक नज़र आएगा उसमें देर तक देखते रहो फिर आंखें मूंद कर अपनी आंख में उसी अपने आकार को देखो, हो सकता है कि न भी आवे, अगर आ जावे तो बहुत सुगमता रहेंगी।

भस्त्रका प्राणायाम करने के बाद थोड़ा विश्राम ले लेना चाहिए ताकि सिर हलका हो जावे।

अपना अनुभव

भस्त्रका और प्राणायाम दोनों को सहल विधि से कैसे बढ़ाया जा सकता है गत वर्ष १९६० ई० में मैंने

इसका उत्तर काशी में यों अभ्यास किया :—

पहली वार	१०	भस्त्रका	करके	१०	प्राणायाम	किए
दूसरी वार	२०	,,	,,	९	,,	,,
तीसरीवार	३०	,,	,,	८	,,	,,
चौथीवार	४०	,,	,,	७	,,	,,
पाँचवींवार	५०	,,	,,	६	,,	,,
छटीवार	६०	,,	,,	५	,,	,,
सातवींवार	७०	,,	,,	४	,,	,,
आठवींवार	८०	,,	,,	३	,,	,,
नवींवार	९०	,,	,,	२	,,	,,
दसवींवार	१००	,,	,,	१	,,	,,
योग	५५०			५५		

यह क्रिया एक दिन अथवा एक समय की है इस से मुझे बहुत लाभ हुआ इतनी संख्या में कोई कष्ट भी नहीं हुआ। साधारण शक्ति बाला मनुष्य साधक जो एक समय में अधिक नहीं कर सकता वह ऐसे धीरे धीरे करके शक्ति बढ़ा सकता है।

प्राणायाम की विधि

विधि का विस्तार तो योग युक्ति में वर्णित है।

पहले रेचक और पूरक का ही अभ्यास करना चाहिए। जिह्वा को पालु से लगाए रखना चाहिए। रेचक के समय मूल बन्द और उड्डियान बन्द लगाना चाहिए। पूरक के समय मूल बन्द तो अवश्य लगाना चाहिए यदि उड्डियान बन्द पहले न लग सके तो उसका थोड़ा थोड़ा अभ्यास कर लेने पर साधक इस योग्य हो जावेगा कि दोनों बन्द पूरक में भी लगा सके। केवल मात्र रेचक पूरक ग्यारा से लेकर बढ़ाते चले जाना चाहिए। जब मूल बन्द और उड्डियान बन्द और जिह्वा का तालु के साथ लगे रहने का अभ्यास परिपक्व हो जाए तो फिर प्राणायाम शुरू करना चाहिए। प्राणायाम का विस्तार से वर्णन मंत्र योग के तृतीय भाग में गायत्री और प्राणायाम के शीर्षक में दिखाया गया है। तद्वत् क्रिया करने से प्राणायाम की सिद्धि के साथ साथ चक्र भी खुलेंगे उसका अभ्यास भी शनैः शनैः करें। सर्व प्रथम पूरक कुंभक का अभ्यास कर लें अर्थात पहला रेचक वेग से बिना मंत्र के किया जावे फिर धीरे धीरे पूरक किया जावे। मंत्र के साथ जितना मंत्र पूरक में आवे उससे चार गुना कुंभक किया जावे फिर धीरे धीरे रेचक किया जावे जो पूरक

से द्वि गुण हो और फिर रेचक का बाह्य कुंभक न करके पूरक मंत्र के साथ किया जावे इसमें यह सावधानी रखनी है कि हठ से न पूरक बहुत दीर्घ किया जावे कि श्वास ही समाप्त हो जावे और कुंभक न हो सके, तो कुछ थोड़ी (शक्ति Margin रख लेनी चाहिए जिससे कुम्भक सुविधा से हो सके और कुंभक में भी कुछ (शक्ति Margin) रख लेनी चाहिए तो रेचक सुगमता से हो सकेगा वरना सहसा कुम्भक के बाद श्वास निकल जावेगा उससे फुफ्स को हांनि पहुँचेगी ऐसे ही रेचक भी सारा जोर बाहिर निकाल देने में न लगाना चाहिए वह भी एक आध श्वांस की शक्ति रख कर पूरक आसानी से हो सकेगा नहीं तो वह भी ज़ोर से अन्दर जाएगा अथवा एक कर जाएगा उस से प्रगति ठीक न होगी। उसके ठीक होने के चिन्ह यह हैं कि मेरू दण्ड में च्योंटी की गति का भान होगा अथवा स्वेद (पसीना) आयेगा तब समझ लेना चाहिये कि वहां वहाँ तक प्राण की गति हो गई है। जब तक च्योंटी की गति का भान नहीं होता तब तक समझ लो कि प्राण चक्रों तक नहीं जा रहा। चक्रों का विस्तार मंत्र योग तृतीय भाग में आ चुका है। जब

प्राण वहां तक पहुंचेगा तो उसे मार्ग न मिलने से वहां थोड़ा दर्द होगा या घबराहट सी होगी, डरना नहीं चाहिये, दूसरे दिन स्वयं वहां प्राण को मार्ग मिल जावेगा और चक्र खुल जावेगा। पसीना जो प्राणायाम से आवे उसे पंखा से न सुखाया जावे, रूमाल से भी न पूछा जावे अपितु हाथ से उसे मालिश कर दी जावे, इससे शरीर लचकीला बनेगा। खाने पीने की बहुत सावधानी वर्तनी चाहिए। योग युक्ति में सविस्तार लिखा है। जब पूरक कुम्भक अर्थात अभ्यांतर कुम्भक दो ढाई मिनट तक पहुँच जावे तब रेचक कुंभक अर्थात बाह्य कुम्भक का अभ्यास करें। जितना रेचक मंत्र हो उससे पहला कुम्भक $\frac{1}{8}$ भाग हो। जब वह पक जावे फिर $\frac{2}{8}$, फिर तिहाई, फिर आधा, पौना, फिर पूरा जितना रेचक था उतना कुम्भक हो धीरे धीरे अभ्यास बढ़ाना चाहिए उतावल प्राणायाम की सिद्धी में कदापि नहीं करनी चाहिए। अभ्यांतर कुम्भक का लाभ हैं चक्रों का खुलना और प्रकाश होना और बाह्य कुम्भक का लाभ है शारीरिक रोगों का निवृत होना और संकल्प की दृढ़ता। जब अभ्यास करो किसी सिद्धस्त निपुण शिक्षक की उपस्थिती में करो। अपना मूल बन्द,

उड्डियान बन्द और प्राणायाम शरीर के वस्त्र उतार कर उसे दिखाया करो ताकि साथ साथ संतुष्टि भी हो जावे, कुछ दिन उनके समीप रहकर ऐसा अभ्यास करो। फिर जब गुरू की तसल्ली हो जावे तो घर में उसको करते और बढ़ाते जाओ। बीच बीच में फिर कभी कभी दिखाया करो और यथोचित आदेश ले आया करो।

सावधान

अपान का सम्बन्ध मन के साथ है, उदान का बुद्धि के साथ। प्राणायाम में अपान मूल बन्द वश में रहे तो मन नहीं निकलता वरना मन निकल जाता है चाहे कितनी देर कुम्भक रहे।

सत्य भूषण—क्या प्राणायाम के लिये भी अधिकारी की आवश्यकता है अथवा इसे सब कोई कर सकता है ?

प्रभु आश्रित—प्राणायाम तो साधन पाद में है परन्तु इसमें सामर्थ तो देखी ही जाती है। एक छोटा बालक हैं ८-१० वर्ष का और एक वयोवृद्ध है साठ सत्तर वर्ष का और एक ने विषयों से अपना शरीर जरजरी कर दिया और श्वास दीर्घ ले ही नहीं

सकता। इस लिये १६ से ४५ वर्ष की आयु तक वाला सुगमता से सीख सकता है।

छोटे बच्चों की सन्ध्या में जो प्राणायाम है, साधारण रूप से पहले गहरा श्वास (Deep Breathing) की विधि से, फिर बड़ी श्रेणियों में साधारण कुम्भक एक मन्त्र तक का करना चाहिए, यदि कोई, प्राणायाम को बल लगा कर सिद्ध करना चाहे तो पहले उसे अपनी छाती को माप लेना चाहिए, उदाहरणतः, यदि छाती ४०" है तो उसे पहले ऐसा अभ्यास करना चाहिए कि २० सैकण्ड उसका पूरक और २० सैकण्ड उसका रेचक हो सके। ३६" हो तो १८ सैकण्ड, सुतराम जितनी छाती हो उससे अर्ध भाग तक रेचक पूरक हो सके तो समझो उसमें पूरा बल है और वह शीघ्र सफलता प्राप्त करेगा।

एक और संक्षिप्त विधि (Short cut) बताता हूँ कि कण्ठ को बन्द करके हृदय अथवा त्रिकुटि में अपना ध्यान जमाओ। जब घबराहट हो तो धीरे धीरे श्वास लेकर छोड़ो और फिर वैसी क्रिया करो। जो प्राणायाम नहीं कर सकते, शीघ्र श्वास फूलने लगता है,

प्राणायाम करने पर, तो वह गायत्री मन्त्र का जप एक श्वास में एक मन्त्र बढ़ाते बढ़ाते गायत्री के साथ "विश्वानिदेव"—मन्त्र का भी जाप करें। यदि चाहते हैं कि मन भी बाहर न जावे तो अंगुली के पोरों से से मन्त्र के साथ हृदय और त्रिकुटि पर रख कर करें तो इसी से मन बाहर न आवेगा।

सत्य भूषण—यदि लम्बे मन्त्र से मन रुक जाये देर तक न कर सके तो ?

प्रभु आश्रित—पहली विधि तो यह है कि थोड़े थोड़े मन्त्रों से जप करे। जब मन उकताने लगे छोड़ देवे और धीरे धीरे बढ़ाता जावे। यदि ऐसा नहीं कर सकते तो दिल के स्थान पर जहां ढप ढप होती है वहां अंगुली का पोरा रखकर ढप ढप को ओम् ओम् की ध्वनि बनाकर सुनता या करता रहे, इससे हृदय भी बलवान हो जाता है। जिन्हें हृदय रोग होता है वह इस क्रिया से सुरक्षित हो जाते हैं।

सत्य भूषण—जिन लोगों की आंख मूंद कर जप ध्यान में रुचि नहीं होती तो क्या वह यज्ञ में मन को एकाग्र करके ऐसा लाभ उठा सकते हैं ?

प्रभु आश्रित—यज्ञ वह है जो ज्ञानेन्द्रियों और कर्मेंद्रियों की सहायता से किया जावे। योग वह है जो ज्ञान कर्मेन्द्रियों को विषय रहित कर मन बुद्धि युक्त आत्मा से किया जावे। बाह्य कर्म को यज्ञ और आन्तरिक कर्म को योग कहते हैं। यज्ञ से सुख सामग्री की प्राप्ति होती है स्वर्ग की और योग से दुःखों की निवृत्ति मृत्यु से पार होना होता है। यज्ञ की गणना कर्म में है और योग की उपासना ध्यान में।

प्यारे ! मन की एकाग्रता के बिना अन्तःकरण शुद्ध नहीं होता। अन्तःकरण की शुद्धि के लिए ही यह सब साधन वर्ते जाते हैं।

———

तृतीय प्रकाश

क्रिया योग

योग मार्ग में चलने वाले के लिए तीन बातें प्रतिदिन करने की हैं। योग दर्शन साधन पाद प्रथम सूत्र में आया :—

तप:स्वाध्याय ईश्वर प्रणिधानानि क्रिया योग: ॥

अर्थात तप:स्वाध्याय और ईश्वर प्रणिधान अर्थात ईश्वर शरणागति यह तीनों क्रिया योग हैं।

यह क्रियाएं दैनिक क्यों ?

सत्य भूषण—यह क्रियाएं क्या प्रतिदिन करें ?

प्रभु आश्रित—

समाधि भावार्थ: क्लेश तनू करणार्श्च ॥ सूत्र–२

अर्थात—यह क्रिया योग समाधि की सिद्धि करने बाला और अविद्या आदि क्लेशों को क्षीण करने वाला है। (अविद्याऽस्मिता राग द्वेष: अभिनिवेश: पञ्च क्लेश:)—साधक को साधना की सफलता पर

अन्तःकरण शुद्ध होता है फिर उपासना समाधि के योग्य बनता है। दो वस्तुएं प्राप्त होती हैं एक आत्म विज्ञान दूसरा आत्म साक्षात। अन्तःकरण के शुद्ध होने पर तो विज्ञान की प्राप्ति होती है और धर्मात्मा, विद्वान योगी होने पर आत्म साक्षात होता है।

सत्य भूषण—भाग्यशाली ही आत्म विज्ञान, आत्म साक्षात कर सकते होंगे ?

प्रभु आश्रित - जिस मनुष्य के अध्यात्म मार्ग के लिए जब भाग उदय होने होते हैं तब स्वतः उसके हृदय में प्रभु प्रेरणा होने लगती है। स्फुरना के रूप में जिसे प्रभु स्वयं ही समझाते और कटि बद्ध कर देते हैं अथवा किसी के, अकस्मात उपदेश वा शब्द सुनने पर अन्दर तत्काल उथल पुथल मच जाती है। वह उथल पुथल भी स्वयं प्रभु ही पैदा करते हैं जो सैकड़ों, सहस्रों और श्रोताओं के हृदय में कुछ भी नहीं हो रहा होता। उस समय उस मनुष्य का हृदय अत्यन्त सरल हुआ होता है। सात्विकता का राज्य फैला हुआ होता है।

ऐसे अन्तःकरण किसी राग द्वेष से रिक्त हुआ करते हैं। वह प्रेरणाए समय समय पर हुआ करती

हैं, और मनुष्य स्वभाव सिद्ध ऐसा आचरण करने लग जाता है। कोई अहंकार, ममत्व, बनावट अथवा दिखावा उसमें नहीं होता। सरल स्वभाव से वह करने लग जाता है जिसका फल यह होता है कि उसका अन्तःकरण शुद्ध होता चला जाता है और वह धर्मात्मा बनता जाता है। उसके आचरण में लोगों को विश्वास जमता चला जाता है फिर उसे मार्ग मिल जाता है जिसका साधन प्रभु स्वयं ही बनाते हैं। फिर उस शुद्ध अन्तःकरण से उसे आत्म विज्ञान की नाना अनुभूतियां होने लगती हैं।

सत्य भूषण—अनुभूति तो विद्वान को भी होती रहती है।

प्रभु आश्रित—अन्नमय कोष में रहने वाले विद्वान धर्मात्मा लोग अपनी बुद्धि से विचारते और कल्पना कर नवीन नवीन बातें पैदा करते हैं और उससे उनको अहंकार भी हो जाता है। वह बहुत बार असत्य भी सिद्ध होती हैं। जब प्राणमय कोष में रहने की अवस्था में अनुभूति पैदा होती है तब अन्तः एकाग्रता जो बिना पुरुषार्थ के अनुभूति होती है वह भी

होती तो काल्पनिक है परन्तु प्रायः सत्य होती है। कभी असत्य अथवा बेमेल भी सिद्ध होती है।

जब विज्ञानमय कोष में प्रवेश होता है तब अपने अपने दृश्यों के रूप में सब अनुभूति होती है, वह किसी लोक विशेष और महापुरुष विशेष द्वारा मिल रही होती है तब वह पूर्ण सत्य होती है। यदि वह अनुभूति अपनी क्रिया में आ जावे तो आत्म साक्षात की बारी आ जाती है वरना ऐसा विज्ञान होता रहता है, आत्म-साक्षात नहीं होता।

सत्य भूषण—बहुत लोग तप और स्वाध्याय करते हैं, व्यवहारी लोग भी करते हैं परन्तु उनका अन्तः-करण तो शुद्ध नहीं हुआ, न समाधि लगी।

प्रभु आश्रित—तप और स्वाध्याय दो प्रकार का है। जब व्यवहार में तप किया जाए, दिन रात व्यवहारी मनुष्य पुरुषार्थ करता है, तनिक भी प्रमाद नहीं करता, क्षुधा पिपासा शीतोषण में भी भली प्रकार जुटा रहता है मानो उसे शीत, ग्रीष्म अनुभव भी नहीं होती, तब ऐसे तप का नाम है कर्म। जब अन्तरात्मा के लिए करता है तब योग क्रिया

कहलाता है ऐसे ही स्वाध्याय जब बाह्य पुस्तकों का किया जावे चाहे वेद शास्त्रों का हो तब उसका नाम अध्ययन होता है। जब आत्म निरीक्षण किया जाए तब वह स्वाध्याय कहलाता है।

ईश्वर प्रणिधान भी जब साँसारिक हो तो भोग, जब आत्मा का हो तो योग कहलाता है। तब समाधि लगती है।

(नोट—यह विचार श्री स्वामी ब्रह्ममुनि जी के व्याख्या किए बतलाए हैं)

सत्य भूषण—प्राणायाम को भी शास्त्रकारों ने परम तप कहा है :—"प्राणायामः परम तपः"—तो क्या कोई और तप करना होता है ?

प्रभु आश्रित—जरा विचार करो, सूर्य का प्रकाश हम तक वायु द्वारा पहुँचता है, आकाश का शब्द भी हम तक वायु द्वारा पहुंचता है। पृथ्वी का गन्ध, सरदी गरमी का भान भी वायु द्वारा हम तक पहुंचता है; सुतराम वायु ही इस ब्रह्माण्ड में सब विषयों की वाहक है। ऐसे ही पिण्ड में प्राण है कि- जिसके द्वारा सब

इन्द्रियाँ अपने अपने विषय को ग्रहण करती हैं। इस वायु के शुद्ध करने से सब संसार के प्राणियों का भला होता है। यज्ञ द्वारा वायु, जल, अन्न, औषधि शुद्ध होने से पिण्ड के प्राण के भोग अथवा क्षुधा पिपासा को मिटाता है—शरीर का आत्मा से सम्बन्ध जोड़ने वाला यही प्राण है। प्राण निकल जाए तो सूर्य का प्रकाश, आकाश का शब्द, पृथ्वी का गन्ध, जल का रस, सरदी गरमी, शरीर के पास ब्रह्माण्ड का वायु पहुंचा भी देवे तो भी उस पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। कारण? प्राण जो ग्राहक (Receiver) था, निकल गया।

एक और अवस्था है, जबकि प्राण तो शरीर में विद्यमान है, परन्तु मनुष्य बधिर होने से नहीं सुन पाता। अन्धा होने से नहीं देख पाता। भीतर से शक्ति ज्योति बन्द हो गई। इसका कारण है मन्द कर्म फल। यह पाप अथवा मन्द कर्म बुद्धि द्वारा हुआ। अब बुद्धि की शुद्धि के लिए तप करने की आवश्यकता है। कैसा तप? जो प्राणों को शुद्ध करके मन बुद्धि के किल्विष दूर कर सके। यजुर्वेद अध्याय ३९ मन्त्र १२ में आया :—

तपसे स्वाहा तप्यते स्वाहा तप्यमानाय स्वाहा

तप्ताय स्वाहा, घर्माय स्वाहा। निष्कृत्यै स्वाहा प्रायश्चित्यै स्वाहा भेषजाय स्वाहा ॥

भावार्थ—मनुष्यों को चाहिए कि प्राणायाम आदि साधनों से सब किल्विष का निवारण करके सुखों को स्वयं प्राप्त हों और दूसरों को करावें—ऋषि दयानन्द।

वायु को वेद में मरूत कहा गया है, मरूत का अर्थ है मर+उत अर्थात मृत्यु से उठाने वाला, जो उठाता है उस में बल, गति और व्यवहार यह तीनों गुण होते हैं और स्वभाविक होते हैं। प्राण निरन्तर गामनशील रहता है, प्राण में बल होता है और प्राण ही सब इन्द्रियों से व्यवहार कराता है। योगी की अभ्यास सिद्धि इसी प्राण पर निर्भर है। शरीर की सब नाड़ियों में व्यान प्राण ही रक्त की गति कराता है, प्राण के बल से स्वास्थ्य, अपान के बल से मल का विसर्जन और कर्म इन्द्रियों में शक्ति उदान के बल से ज्ञान इन्द्रियों में शक्ति आती है। अपान का प्राण में मेल होने से चक्र खुलते हैं और मानसिक दोष दूर होते हैं। दोष मृत्यु को बुलाते हैं और दोषों का त्याग जीवन को देता है।

ऋग्वेद मं० १, सूत्र० ३८ के मंत्र भी इसी प्राण सिद्धी के लिये संकेत कर हैं। जैसे :—

मा वो मृगो न यवसे जरिता भूदजोष्यः ।
पथा यमस्य गादुप ॥ ऋ० १-३८-५ ॥

भावार्थ—जैसे हिरन युक्ति से निरन्तर घास खाकर सुखी होते हैं, वैसे प्राणवायु की विद्या को जानने वाला मनुष्य युक्ति के साथ आहार विहार कर वायु के मार्ग से अर्थात मृत्यु को प्राप्त नहीं होता और संपूर्ण अवस्था को भोग के सुख से शरीर छोड़ता है।

वन्दस्व मारुतं गणं त्वेषं पनस्युमर्किणम् ।
अस्मे वृद्धा असन्निह ॥ ऋ० १-३८-१५ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को चाहिए कि जैसे पवन कार्यों को सिद्ध करने के साधन होने से सुख देने वाले होते हैं वैसे विद्या और पूरुषार्थ से सुख किया करें।

दर्शनकारों ने "प्राणायामः परं तपः" प्राण याम को परम तपः कहा और योग दर्शन साधन पाद सूत्र ५२ में इसका फल बतलाया 'ततः क्षीयते प्रकाश आवरणं' अर्थात उस प्राणायाम के अभ्यास से प्रकाश अर्थात ज्ञान का आवरण क्षीण हो जाता है।

व्याख्या—जैसे जैसे साधक प्राणायाम का अभ्यास करता है, वैसे वैसे उसके संचित कर्म संस्कार और अविद्यादि क्लेश दुर्बल होते चले जाते हैं। यह कर्म संस्कार और अविद्यादि क्लेश ही ज्ञान का आवरण अर्थात परदा हैं। इस परदे के कारण ही मनुष्य का ज्ञान ढका रहता है। और इस लिये वह मोहित हुआ रहता है जब यह परदा दुर्बल होता होता सर्वथा क्षीण हो जाता है तब साधक का ज्ञान सूर्य की भांति प्रकाशित हो जाता है, इसलिये साधक को प्राणायाम का अभ्यास अवश्य करना चाहिए।

सांसारिक पदार्थों का रस भी ऐसा देखने में आता है कि किसी भी फल का रस आप नहीं ले सकते जब तक उसका छिलका-परदा न उतारें, ऐसे ही ब्रह्मानन्द रस भी तब प्राप्त हो सकता है जब अहंकार का परदा, स्वार्थ का परदा उतार लिया जावे।

सत्य भूषण—कई फल बिना छिलके उतारे खाने में रस देते हैं।

प्रभु आश्रित—जो मनुष्य निष्काम निःस्वार्थ कर्म करते हैं वह भी जो भी काम करें वह परमेश्वर

का भक्ति रस है। निष्काम कर्म ही तो स्वार्थ के परदे से रहित होता है।

सत्य भूषरा—कई फल विना गुठली छिलके के होते हैं वह पूरे खाए जाते हैं।

प्रभु आश्रित—जो तुरीय अवस्था है निरंहकार अर्थात अहंकार के परदे से रहित है उसके लिये सब संसार जैसा है सब प्रभु भक्ति है।

किसी भी रस को लेने के लिये पहले पदार्थ का छिलका उतारा जावे और फिर अपनी जिह्वा के ऊपर जो ओष्ठों और दांतों का परदा है उसे भी खोला जावे तब उसका मेल हो सकता है अर्थात जो शब्द प्रार्थना जप का बोलना चाहते हैं वह अहंकार रहित हों। मानवी शब्द प्रायः अहंकार सहित होता है इसलिये दैवी शब्द बोलना चाहिए। दैवी शब्द अहंकार स्वार्थ रहित होता है।

सत्य भूषरा—इन आवरणों का दूर होना बहुत काल मांगता है।

प्रभु आश्रित— छोटी से छोटी चीज़ पकाने के लिये भी कुछ समय लगता है और कुछ देख भाल भी

करनी पड़ती है, एक कच्ची ईंट को पकाना हो तो भट्टी के सिवाय और कहीं नहीं पक सकती। मन को पकाने के लिए तो बड़ी भट्टी की ज़रूरत होती है। साधारण अग्नि से नहीं पक सकती, इस लिए बड़े तप की आवश्यकता है। प्राणायाम को तप का नाम दिया गया है।

आहार—तप

प्राणायाम के लिये आहार हलका और सात्विक होना चाहिए; जो समान वायु को न बिगाड़े—हित मित निमित का भोजन जिस में मोह और लोभ न हो जीवन की आवश्यकता के लिये खाया जावे। प्राणायाम से बुद्धि सूक्ष्म हो जाती है और मूल बंद उड्डियान वन्द लगाने से काम, क्रोध और लोभ की वृत्तियां जो बुद्धि को भ्रष्ट नष्ट करती हैं बदल जाती हैं और बुद्धि पवित्र हो जाती है।

सत्य भूषण—सब योगी आहार पर बल देते हैं कृपया सात्विक भोजन पर अधिक प्रकाश डालें।

प्रभु आश्रित—अध्यात्म साधन के लिए भोजन में पूरी सात्विकता हो तो साधन में सहायता मिलती है।

भजन का निर्भर अधिकतर भोजन और भाव पर है। मन्त्र योग-तृतीय भाग में कई बातें आहार विषयक समझाई गई हैं। अधिक यह हैं:—

(१) अन्न शुद्ध कमाई का हो, हिंसा से पैदा न किया गया हो।

(२) बनाने बाला, परोसने वाला, खिलाने वाला, लाने वाला ये सब सात्विक भावों से, श्रद्धा से बनाएं, परोसे, लाएं और खिलाएं। इन तीनों समय में सेवक में काम, क्रोद्ध, लोभ, मोह और अहंकार की दुर्वृत्ति न आने पावे। तप और श्रद्धा से काम लिया जावे।

(३) कोई पदार्थ ऐसा न बनाया जावे जिससे काम, क्रोद्ध की उत्पत्ति हो या जो मोह आलस्य मूढ़ता के प्रमाणों को पैदा करे जैसे मद्य मांसादि।

(४) खाने वाला सात्विकता से खाए, प्रभु का प्रसाद समझकर प्रार्थना करके, आसक्ति और लोभ रहित होकर खाए। अहंकार वृति से न खाए।

(५) बनाने वाला जब नाना प्रकार के पदार्थ बनाने लगता है तो अपनी मान प्रतिष्ठा के लिये

बनाता है कि मेरा यश हो। खाने वाला भी बहुत से उत्तम पदार्थों को देखकर भीतर ही भीतर प्रसन्न होता है कि मैं इता सम्मान के योग्य हूं, तब उस भोजन से अहंकार पैदा होता है।

(६) बासी पदार्थ से मोह मूढ़ता पैदा होती है।

(७) स्वादु बना बनाकर खाने से लोभ वृति पैदा होती है।

(८) सुगंधित पदार्थ काम, क्रोध पैदा करते हैं।

इस संसार में वर्तमान युग में भोजन की साव-धानी करने से उस साधक के लिये तो बहुत कठिन है जिसे दूसरे का अन्न खाना पड़ता है। एक अन्तिम बात समझिए। स्वार्थी मनुष्य ईर्ष्यालू होता है और जो धन वह कमाता है, धन बढ़ने पर उसे अहंकार हो जाता है। फिर जो सेवा वह करता हैं उसमें उस की यश की भावना होती है। अब अन्न धन आदि की सेवा में उसका अहंकार, ईर्षा और स्वार्थ छिपा रहता है। ऐसे मनुष्य का अन्न खाने वाले में अवश्य यह दुर्गुण गुप्त पैदा हो जावेंगे और वह अपना भक्ति

भाव विनम्रता या समर्पण धीरे धीरे खो बैठेगा, अहंकार और कठोरता पैदा करता जाएगा और यहां तक कि वह मर्यादाओं का उलंघन करने लगेगा।

चतुर्थ प्रकाश

अन्तःकरण शुद्धि के अन्य उपाय

सत्य भूषण—अन्तःकरण को शुद्ध करने के और भी तो उपाए हो सकते होंगे।

प्रभु आश्रित— हां। मानव शरीर में पांच कोष हैं, कोष ढकने को भी कहते हैं। और कोष खजाने को भी कहते हैं ढकने खोल दिए जावें, या उठा दिए जावें तो नीचे धन ही धन मिलेगा, उसके खोलने के और भी उपाए होते हैं, सुनो ! अशुद्ध आहार से अन्नमय कोष प्राणमय कोष, व्यवहार से मनोमय कोष और विचार आचार से विज्ञानमय कोष

बिगड़ते हैं। उसका फल स्वरूप दुःख, शोक, भय आदि आन्दमय कोष में उत्पन्न होते हैं।

अन्नमय कोष के शुद्ध करने के लिये यज्ञ हवन करना चाहिए क्योंकि भूरग्ने स्वाहा। अन्न के खाद्य पदार्थ सब (भूः) पृथ्वी से पैदा होते हैं और पृथ्वी (भूः) का देवता अग्नि है इस लिये अग्नि का आश्रय लेना चाहिए।

प्राणमयकोष को शुद्ध करने के लिये प्राणायाम करना चाहिए क्योंकि "भुवर्वायवे स्वाहा" अन्तरिक्ष का देवता वायु है, उसे शुद्ध करने के लिये वायु देवता का आश्रय लेना चाहिए।

विज्ञानमय कोष को शुद्ध करने लिये गायत्री जप ध्यान योग करना चाहिए।

स्वरादित्याय स्वाहा क्योंकि स्वःलोक का देवता आदित्य सवितः है, गायत्री का देवता सवितः है उसका आश्रय लेना चाहिए।

मनोमय कोष को शुद्ध करने के लिये सत्य और मौन का आश्रय लेना चाहिए क्योंकि शास्त्रकारों ने

कहा है मन. सत्येन शुध्यति ।

भर्ग: सवित: देव का तेज है । पाप अज्ञान नाशक यही ब्रह्मवर्चस है जैसे वही आंख सूर्य सवित: के तेज को ग्रहण कर सकती है जो विकार दोष रहित हो, जिस पर से परदा उठ गया हो । ऐसे इस भर्ग: को वही हृदय धारण या ग्रहण कर सकता है जो मल विक्षेप आवरण से अर्थात वासना चंचलता अहंकार से रहित हो। स्वार्थ और अहंकार से रहित हो । यह भर्ग: विज्ञानमय कोष से हृदय में नीचे उतरती है अर्थात द्योलौक की शाँति देने वाली विद्युत समाधि ध्यान द्वारा हृदय में उतरती है ।

निन्दा से बचो

सत्यभूषण—जप करने वालों को भर्ग: का तेज क्यों उत्पन्न नहीं होता ।

प्रभु आश्रित—जिस वाणी से जप करते हैं, प्रार्थना आराधना करते हैं, उसके विपरीत आचरण करते हैं। प्रतिदिन का जप और प्रतिदिन का मैल। जप तो दिन में दो बार करेंगे और मैल दिन में कई बार चढ़ावेंगे । सुनो ! वह मैल क्या है ।

निन्दा का प्रतिवाद

यो नः शपादशपतः शपतोयश्च नः शपात् ।
वृक्ष इव विद्युताहत आमूलदनु शुष्यतु ।। अ. ६-५६-१

(यः अशपतः) जो निन्दा न करते हुए भी (नः शपात) हमें बुरा भला कहे और (यः च) जो (शपतः) प्रतिवाद रूप में बुरा भला कहते हुए (नः शपात्) हमें बुरा भला कहे वह (विद्युता हतः) बिजली की मार से मरे हुए (वृक्ष इव) वृक्ष के समान (आमूलात् अनुशुष्यति) चोटी से जड़ तक सूख जाता है । व्यर्थ का निन्दक और प्रतिनिन्दक दोनों ही असत्य और मानस पाप से सूख जाते है ।

इसी प्रकार अथर्ववेद काण्ड ११, सूक्त ६ मन्त्र ७ में आया :—

मुञ्चन्तु मा शपथ्यादहोरात्रे अथो उषाः ।
सोमो मा देवो मुञ्चतु यमाहुश्चन्द्रमा इति ।।

भावार्थ—परनिन्दा या दूसरे के विषय में कठोर दुःखदायी वचनों के कहने से उत्पन्न होने वाले पाप से, दिन और रात उषा मुझे मुक्त करे । सोमदेव जिसको विद्वान् 'चन्द्रमा' कहते हैं वह भी मुझे पाप से मुक्त

करें। अर्थात् दिन रात्रि और उषा काल और चन्द्र को पवित्र और शान्तिकारक, मनन करके हम अपने चित्त को पर निन्दा और क्रोध से बचावें।

अर्थात दिन रात और प्रातःकाल मुझको निन्दा से छुड़ावें जिसको चन्द्रमा कहकर पुकारा जाता है वह दिव्य गुण युक्त सोम भी मुझको निन्दा कार्य से बचावें ! निन्दा एक भारी पाप है, तम्बाकू, सिगरेट, बीड़ी की तरह यह महान पाप है, सिगरेट बीड़ी पीने वाला वायु को दुर्गन्धित करता है और प्राणियों के फुफस में तम्बाकू के रोग उत्पादक कीटाणु श्वास द्वार से प्रवेश कर जाते हैं, ऐसे ही निन्दक अपने इस अवगुण से आकाश में वायु में अपने छिद्र अन्वेशक शब्द फैलाता है। तम्बाकू से ही केवल भौतिक शरीरों को हानि होती है परन्तु निन्दा से तो भौतिक, दैविक, सामाजिक आध्यात्मिक शक्तियों को हानि पहुंचती है। विस्तार से सुनो :—

<u>भौतिक हानि</u>—एक दूसरे की निन्दा करने से संघठन और एक दूसरे के पास मिल कर बैठने और काम करने की शक्ति का ह्रास हो जाता है, समाज

खोखली हो जाती है, छिद्र देखने वाले को दूसरे का छोटा सा अवगुण तो महान नजर आता है परन्तु अपना महान अवगुण भी गुण प्रतीत होता है।

आधिदैविक हानि—वायु में अपने अशुभ और असभ्य विचार फैलाता है।

आध्यात्मिक हानि—पहले अपने मन में अशाँति पैदा करता हैं, शांति नहीं रहती, एक आग सी लगी रहती है जो दूसरों को जलाती है। जिस आदमी की निन्दा की जाती है, जब वह सुनता है तो वह जल जाता है, क्रोधित होकर भड़क उठता है, उसका प्रेम, विश्वास सब भंग हो जाता है और निन्दक के साथ शत्रुता बन जाती है।

निन्दा की गति

निन्दा स्पर्शता छूत को बीमारी की तरह प्रभाव करती है और जो इस स्पर्श रोग में फंस जाता है, उसका निकलना कठिन हो जाता है। यह निन्दा का रोग परिवारों में प्रवेश कर गया और घरों को नरक धाम बना दिया, पारष्परिक टीका टिप्पणी करते

दोष चुनते और बिष फैलाते, बदनामी करते रहते हैं, अपने आपको सब कोई देवता समझता है और दूसरे को निकृष्ट ख्याल करता है। चित्त में अशाँति बनी रहती है।

निन्दा की उत्पत्ति

ईर्ष्या से निन्दा पैदा होती है और निन्दा घृणा को जन्म देती है और वाणी कटु बोलने लगती है, कान सुन सुन मन को प्रसन्न करते रहते हैं, अपने अन्दर की कोमलता धीरे धीरे मन्द होकर घर जाती अथवा शिथिल पड़ जाती है बड़े बड़े कार्य उत्साह से लोग आरंभ करते हैं, कुछ दिन बाद एक दूसरे का छिद्र देख देख कार्य बन्द अथवा असफल हो जाते हैं, उसमें कोई बड़ा बनना चाहता है, कोई स्वार्थ लोभ करता है, किसी को उस काम से आसक्ति मोह हो जाता है, किसी की कोई गुप्त कामना काम करती रहती है, इसे दूसरे सहन नहीं कर सकते अथवा स्वयं उन अधिकारों और लाभ को लेना चाहते हैं इसलिए फूट पड़ जाती है। चन्द्रमा की चाँदनी हर्ष के परमाणुओं को फैलाती है और उषाकाल के पर-

मारगु भी अन्धकार को मिटाने वाले सुहावने, सुन्दर, शांत, पवित्र परमारगुओं को फैलाते हैं। जो कोई भी व्यक्ति इस पवित्र समय में निन्दा करता है वह और भी अधिक पापी है।

सत्य भूषरग—ईर्ष्या के दूर करने का कोई उपाय भी है? जैसे दूसरे दोषों को दूर करने के उपाय हैं।

प्रभु आश्रित—योग दर्शन में इसका उपाय तीसरे विभूति पाद सूत्र २३ में बतलाया है:—"मैत्र्यादिषु बलानि"—अर्थात मैत्री आदि भावनाओं में संयम करने से बल मिलते हैं।

"मैत्री करुरगा मुदितो पेक्षा—" इस उपाय के दो प्रकार हैं, एक साधाररग दूसरा विशेष।

साधाररग उपाय तो यह है कि पूण्यात्मा मनुष्यों में प्रसन्नता की भावना बनाना, जिनके पास बैठने को मन चाहता हो और बैठ कर उठने को मन न चाहे, उनमें श्रद्धा भक्ति भाव रखना। प्रतिदिन एकान्त में बैठकर उनकी मुदित मुद्रा में संयम करना, उनके गुरगों को बार बार दिल से दिमाग में याद कर कर बिठाना

और फिर उन्हीं के उन गुणों के लिए धारण करने का प्रेम पैदा हो जाना, उसी मुद्रा में अपने को लीन कर देना। जितना अधिक समय लीन रह सके, इससे निश्चय ईर्ष्या के दोष से सर्वथा शून्य हो जाता है और सदैव प्रसन्न रहता है।

दूसरा उपाय है, जिस व्यक्ति के प्रति ईर्ष्या है, यदि साधक सच्चे हृदय से ईर्ष्या के अवगुण को हृदय से निकालना चाहता है तो एकांत में बैठकर उस मनुष्य के गुणों को बार बार याद करे, जहां जहां उसके गुण का अपने अथवा दूसरे पर प्रभाव पड़ा हो, उसे याद करे। इन्हीं गुणों की प्रशंसा परोक्ष में भी करे तो उस मनुष्य के प्रति मैत्री उत्पन्न हौने लग जायगो और ईर्ष्या हटने लग जायगी। जैसे विश्वामित्र और वसिष्ठ की कथा है। चाहे वह रूप और है तो हम वसिष्ठ उसकी अनुपस्थिति में अपने घर में उसके गुणों की प्रशंसा कर रहे थे कि विश्वामित्र को जो घातक भाव से गया था, कान से अपनी प्रशंसा सुनकर तत्काल अपना दुर्गुण यथार्थ भान हुआ और वसिष्ठ को अपना ईर्ष्यालू नहीं अपितु सच्चा मित्र माना और क्षमा माँग कर एक हो गए। ऐसे ईर्षालू मनुष्य करे।

यदि ईर्ष्यालू को दूसरे का गुण गुण ही प्रतीत नहीं होता तो वह कीनावर है, वह सचाई और सच्चे दिल से ईर्ष्या के अवगुण को छोड़ना नहीं चाहता—ऐसा समझना चाहिए और यह बल जो संयम से प्राप्त होता है, वह स्थाई बल हो जाता है। बल का गुण है संघठन, संगति करण। दो का एक हो जाना परन्तु जहाँ एक के दो हो जावें, वहां बल घट जायगा।

इस सूत्र की "मैत्रीकरुणा मुदिता" में तो दो का एक हो जाना है और उपेक्षा में एक के दो बन जाते हैं। इसलिए उपेक्षा में बल नहीं रहता।

सत्य भूषण—घृणा का कोई उपाय है?

प्रभु आश्रित—ईर्ष्या का कारण स्वार्थ होता है और घृणा का कारण अहंकार। इसलिए घृणा किसी भी प्रकार की हो उसका एक हो उपाय है नम्रता। जिससे घृणा है, यदि सच्चे हृदय से हटाना चाहता है तो उसका मान करे सत्कार करे। नम्रता से पेश आए नम्रता से सेवा करे और उदारता से उसकी सेवा स्वीकार करे। इनकार, आग्रह क करे।

दूसरा उपाय है संयम का। यदि किसी के मैले कुचैले पन से घृणा हो तो अपनी अन्दर की मैल, विष्टा, मूत्र, अस्थि, रक्त, पीप में संयम करे। यदि जाति अभिमान से घृणा है तो अपने शैशव, उत्पत्ति और उसकी उत्पत्ति में संयम करे। यदि छोटे बड़े का दरजापन से घृणा है तो अपने से ऊपर पद वालों की छाप अपने ऊपर डाले।



पंचम प्रकाश

संयम

सत्य भूषरण—जप, प्रारगायाम तो बहुत लोग करते हैं परन्तु जिस लिये किया जाता है कि दोष दूर हों, बुद्धि सूक्ष्म बने, कृपया उनके साधन उपाय बता दें।

प्रभु आश्रित—वहुत कुछ साधन तो मंत्र योग तृतीय भाग में आ चुके हैं, कुछ इस भाग में वताए जा रहे हैं :—

(१) पाऊं के अंगुठे के नाखून में अपना आकार देखना, इसका वर्णन पहले पृष्ठों में आ चुका है। इसके लाभ :—

(क) दृष्टि सदा नीचे बनी रहेगी।

(ख) दूसरे के दोषों को देखने का स्वभाव न रहेगा।

(ग) अपने को सदा विनम्र रखेगा और अपने ही

दोषों को देखने का स्वभाव बन जावेगा।

(२) नासिका के अग्र भाग अर्थात नोक पर आंख अर्ध मिलन करके धारणा करने से जब अभ्यास परिपक्व हो जावेगा तो उसके तीन लाभ होंगे।

(क) मनन शक्ति इतनी बढ़ेगी कि जैसे तेल की विन्दु जल में पड़ने से फैल जाती है और नाना प्रकार के रंग दिखाती है ऐसे साधक जिस शब्द को अथवा उपदेश को सुनेगा, वह अपने अन्दर उथल पुथल विश्लेषण होता पाएगा।

(ख) दिव्य गंध को प्राप्त करेगा जिसका फल यह होगा कि उसमें दिव्य गुण खिंचे आवेंगे और अपने जीवन को सुगंधित वना देगा जिस पर लोग आकर्षित होंगे।

(ग) संसारी गंधों में उसकी आसक्ति न रहेगी।

(३) आकाश में संयम करना।

(क) खुले मैदान में अथवा अपने मकान की छत के ऊपर खड़े होकर अपनी दृष्टि को आकाश की ओर ले जाओ और एकाग्रता से एक मिनट देखते रहो, केवल आकाश ही नज़र आवे, जितना ऊंचा दृष्टि को ले जा

सको अर्थात दृष्टि द्वारा मन की वृति को ले जाओ फिर आंखें मूंद कर सिर नीचे करके ख्याल से देखो, जहां तक आंखें खोले दृष्टि पहुंची थी, वहां तक विचार धारा में आंखें मूंद पहुंच जाओ। ऐसा अभ्यास प्रति दिन करते करते और समय बढ़ाते बढ़ाते पांच मिनट तक ही ले जाओ और अन्तर्मुख जितनी देर तक बैठ सको बैठने का अभ्यास बनाओ तो इससे निम्न लाभ होंगे।

(क) जिन लोगों की स्मृति कमजोर हो गई है उनकी स्मरण शक्ति बढ़ जावेगी।

(ख) जो संकुचित विचार के हैं वह दीर्घ दर्शी, सूक्ष्म दर्शी और दूर अन्देश, परोक्षदर्शी हो जावेंगे।

(ग) मन निर्विकल्प होता जावेगा। लय योग की अवस्था प्राप्त हो जावेगी।

यह तो मैं कहता हूं आधुनिक परीक्षण के आधार पर। योग शास्त्र विभूति पाद सूत्र ४१ में लिखा है:-

श्रोत्रा काशयोः सम्बन्ध संयमाद दिव्यं श्रोत्रम्॥

अर्थ—कान और आकाश के सम्बन्ध में संयम कर लेने पर योगी के श्रोत्र दिव्य हो जाते हैं :—

व्याख्या—शब्द को ग्रहण करने वाली श्रोत्र इन्द्रिय अहंकार से उत्पन्न हुई है और आकाश की उत्पत्ति अहंकार जनित शब्द तन्मात्रा से हुई है इस लिये आकाश शब्द और श्रोत्र इन्द्रिय इन तीनों की एकता है, इस श्रोत्र और आकाश के सम्बन्ध को जब योगी संयम द्वारा प्रत्यक्ष कर लेता है तो उसकी श्रोत्र इन्द्रिय में दिव्य शक्ति आ जाती है, फिर वह सूक्ष्म से सूक्ष्म शब्द को सुन सकता है। ऋषि दयानन्द जी महाराज ने पाठ भूल जाने तथा पाठ न सुनने से गुरू वर महर्षि विरजानन्द जी महाराज के ताड़न पर सारे पाठ को आकाश से कैसे ग्रहण किया था, यह सब आर्य जानते हैं।

विधि

कान की कनूड़ी को कान के छिद्र में अपने दोनों हाथों की तर्जनी अंगुली के पोरों से दबाया तो बादल की ध्वनि सुनाई देगी। कुछ देर के बाद कान खोलें तो एक विचित्र अवस्था कान की हो जाती है, इससे पृथ्वी पर रहने वालों की ध्वनि सुनाई दे सकने की शक्ति उत्पन्न होती है।

फिर कनूड़ी को कान के छिद्र के अन्दर दबाया तो सूर्य का प्रकाश हो जाता है और सूर्य का दर्शन होकर स्वःलोक के आकाश से एक सूक्ष्म शङ्ख की ध्वनि आने लगी और वह ध्वनि आकाश के बहुत दूरस्थ भाग से प्रतीत होती है। इसका संकेत यह होता है कि आकाश में निहित गुप्त शब्द विद्यमान हैं, वह सुनाई देंगे। इसका मैं प्रतिदिन थोड़ा थोड़ा अभ्यास कर रहा हूँ। चूंकि यह सब विधियाँ संयम सिद्धियों की बहुत कठिन हैं, गलती हो जाने पर हानि कारक हो सकती हैं, इसलिए सैकण्डों से बढ़ाता हूं और साधकों को भी अधिक सावधानी से क्रमशः ऐसा ही करना चाहिए।

एक और विधि—नाला खाल में मन्द मन्द बहते अथवा गहरे तालाब में दृष्टि डालो और उसके अन्दर आकाश के प्रतिबिम्ब को देखो, बहुत गहरा नीचे विशाल आकाश नजर आवेगा, उसमें दृष्टि जमाओ और एक मिनट से शुरू करो, फिर आंखें मूंद कर उसी प्रकार जल के अन्दर आकाश वैसा ही देखो और समय बढ़ाते जाओ, पाँच मिनट तक ले जाओ और

आंखें मूंदे जितनी देर तक आराम से बैठ सको आकाश को देखते रहो, इस से जहां सोच बिचार की दृष्टि गहरी होगी, वहां मस्तिष्क में ठंडक पहुँचेगी और बिचार भी ठंडे दिमाग से कर सकोगे।

(४) जिह्वा के अग्र भाग पर संयम और ताल के साथ जिह्वा को उलटा कर लगाने से जो लाभ और विधि है वह मंत्र योग तृतीय भाग में बता दिए हैं। इसी प्रकार मंत्र योग दूसरे तीसरे भाग में काम, क्रोधादि का तुरन्त प्रतिकार और रजोगुणी तमोगुणी दूषित परमाणुओं से बचने की विधि तीसरे भाग में आ चुकी है। मंत्र योग की सब क्रियाएं अपने आप में कैवल्य कुम्भक प्राणायाम और प्रत्याहार और धारणा का अभ्यास कराती हैं। मन्त्र योग की सिद्धि के लिए उपरोक्त शिक्षाओं पर आचरण करने से सिद्धि होती हैं।

श्रद्धा से जप करने का फल बुद्धि की तीव्रता है। विश्वास से जप करने वाले की बुद्धि सूक्ष्म हो जाती हैं।

एकाग्रता से जप करने वाले में पवित्रता आती है

श्रौर धीरे धीरे जब वह एकाग्रता सवितः का भान करने लगती है तो भर्गः धारण करने के योग्य बन जाता है जिससे उसकी पाप वासनाएं दग्ध हो जाती हैं श्रौर प्रकाशमय श्रथवा ज्योतिर्मय बुद्धि बन जाती है. जैसे श्राग्नेय दर्पण को सूर्य के सम्मुख करने से तत्काल श्रग्नि प्रगट होती है, वह प्रकाश भी देती है श्रौर दाह भी कर देती है।

सत्य भूषण—कृपया किसी सहल दृष्टाँत से समझाए।

प्रभु श्राश्रित—लो सुनो ! ऐसी सुगम विधि बतलाता हूँ जो शीघ्र समझ में श्रा जावेगी। यह त्रिपदा गायत्री मानुषी जीवात्मा की सवारी है। तीन पाद के श्रर्थ पाऊँ के हैं। चेतन मूर्तिमान पदार्थों में जैसे चार पाद वाले पशु, द्विपाद मनुष्य हैं। पाद के श्रर्थ श्रंश भी हैं। जड़ मूर्त्तिमान पदार्थों में जैसे खाट चार पाऊँ वाली है, पाद के श्रर्थ उपाधि भी हैं जड़ श्रमूर्त्तिमान पदार्थों में पाद के श्रर्थ श्रवस्था भी हैं। चेतन श्रमूर्त्ति-मान पदार्थों में यहां ज्ञान गुण भाव दृष्ट होता है इस लिए गायत्री के तीन पाद तीन श्रवस्थाएं तीन प्रकार

के गुण ज्ञान से सवारी है।

तीन पाद ट्राईसिकल (Tricycle) के होते हैं। बच्चे चढ़ते हैं क्रीड़ा के रूप में। कई लोग तो गायत्री का जप इन बच्चों की तरह शुगुल के रूप में करते हैं बड़े चाव के साथ। परन्तु जैसे बालकों का किसी लक्ष्य तक पहुंचने का कोई धेय्य नहीं होता है। ऐसे उन लोगों का होता है उनके संस्कार बनते हैं। मोटर रिक्षा (स्कूटर) के भी तीन पाद होते हैं, उन पर चढ़ते हैं किसी मंजिल तक पहुँचने के लिये और वह चालक के सहाय्य से पहुँच जाते हैं। ऐसे सकाम भाव से जप करने वाले होते हैं सकाम फल पा लेते हैं, अन्तःकरण शुद्ध नहीं होता।

तीसरे हवाई जहाज़ (वायुयान) के तीन पाद होते हैं। ट्राईसिकल के तो एक आगे और दो पीछे परन्तु वायुयान के दो आगे और एक पीछे होता है। इसीप्रकार गायत्री के तीन पाद हैं। दो जो सम्मुख होते हैं वह न्याय और दया के समझो और एक पीछे का, वह सत्य का है और दो पंखे लगे हुए होते हैं वायुयान को एक जितेन्द्रता और दूसरा शिव सङ्कल्प का। गायत्री उपासक जब इन गुणों को धारण कर लेता है

तब मुक्ति का अधिकारी बन मुक्त होता है और अपने लक्ष्य तक शीघ्र पहुंच जाता है। किस विधि से जप करें ? ग्यारह ओ३म् लगाकर जप करने से "ओ३म्[१] भूः ओ३म्[२] भुवः ओ३म्[३] स्वः ओ३म्[४] महः ओ३म्[५] जनः ओ३म्[६] तपः ओ३म्[७] सत्यम् ओ३म्[८] तत् सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि। धियो योनः प्रचोदयात्। ओ३म्[९] ओ३म्[१०] आपो ज्योति रसोऽमृतं, ब्रह्म भूर्भुवः स्वरोम्[११] ॥—यह सम्पुट गायत्री कहलाती है। आंखें मूंद जप करो। उपांशु जप करो, ओष्ठों पर मन्त्र के शब्द शब्द का उच्चारण हो, वहाँ ही कान सुनें, मन वहाँ रहे और प्राण वहां रहेंगे ही। आंखें मूंदे अन्दर जहां शब्द बोलो वहाँ लिखा हुआ दिखाई दे। यह अभ्यास कठिन है और समम और लग्न मांगता है। इसका अभ्यास एक ओ३म् वाले गायत्री से आरम्भ कर परिपक्व किया जा सकता है।

इसका फल क्या होगा ? फल यह होगा कि अपने आप निष्काम कर्म करने की सामर्थ, योग्यता और

समझ आ जावेगी। और अन्तर आत्मा की आवाज को सुनने और पहिचानने के योग्य बन जावेगा। फिर अन्तः प्रेरणाओं को जब समझने की योग्यता हो जाती है, तो आचरण सुगम हो जाता है।

एक और विधि है, त्रिकुटि में गोल दायरा ○ में आंखों द्वारा मन्त्र लिखने से तालु में जिह्वा लगाकर– इसका फल जितेन्द्रता आती है और भर्गः की प्राप्ति होती है। और हृदय में इसी प्रकार मंत्र को देखने से समर्पण शक्ति आती है।

पहला पद 'धियो यो नः प्रचोदयात्' है। साधक को प्रभु प्रेरणा समझने की योग्यता आ जाती है। तमोगुणी वृति वालों को तो प्रेरणा का पता नहीं हो सकता कि प्रेरणा क्या वस्तु है। रजो गुणी वृति वाले स्वप्न समान समझते हैं। सतो गुणी वृति वालों को प्रेरणा समझने की योग्यता तो आती है परन्तु यह भी कई प्रकार की है, एक वह जिन्हें विद्युत के समान क्षणिक प्रेरणा होती है, परन्तु उतावले चंचल मन होने के कारण क्षणिक गुम कर बैठते हैं, उन्हें प्रेरणा मिलकर समझ आ जाने पर भूल जाती है ऐसी 'बिजली

समान कई बार आती है।

दूसरे वह जो दीपक समान जिस में तेल कम हो वत्ती जलती हुई भी जल्दी बुझ जाती है यह कृपण वृति वाले सतोगुणी को आती है यह भी प्रेरणा का ब्रह्मा बैठते हैं।

तीसरे वह दीपक समान हैं जिन में तेल पूरा है वत्ती जल रही है परन्तु वायु में रखा हुआ है, वह वायु के झोंके से बुझ जाता है, यह लोग वह सतोगुणी हैं जो वाहिर के भय या प्रलोभन मिलने पर प्रेरणा को ठपचन्द कर बैठते हैं।

चौथे वह हैं जो दीपक तो अन्दर सुरक्षित है, तेल वत्ती भी ठीक है परन्तु फूला आ जाने से उसे उतारते काटते नहीं हैं, बुझ जाता है, यह अहंकारी मनुष्य होते हैं।

पांचवें चन्द्रमा के समान घटते बढ़ते रहते हैं कभी प्रेरणा पर आचरण किया, उन्नत हो गए कभी छोड़ दिया ह्रास हो गया, कभी कम कभी ज्यादा करने लग जाते हैं।

छटे सूर्य समान एक रस सतोगुणी, ऐसा कोई

कोई सच्चा साधक महा पुरुषों की तरह ग्राचरण करने वाला होता है।

सत्य भूषरण—गायत्री मंत्र साधना के लिये है या उपासना के लिये।

प्रभु ग्राश्रित—साधना से शारीरिक ग्रौर मानसिक बल बढ़ता हैं। उपासना से बौद्धिक ग्रौर ग्रात्मिक बल बढ़ता है। साधना से उपासना के योग्य बनता है ग्रौर उपासना से ज्ञान प्राप्ति होती है ग्रौर ज्ञान से मुक्ति होती है।

गायत्री मन्त्र ऋग्वेद में ज्ञान, यजुर्वेद में कर्म ग्रौर साथ में भक्ति उपासना के रूप में ग्राया है ग्रौर ग्रथर्ववेद में महातमय गाया है। इसलिये इसी से साधना ग्रौर इसी से उपासना की जाती है, जीवन साधना=भू र्भुवः=स्वः, जीवन प्रार्थना=धियो योनः प्रचोदयात्, जीवन उपासना=भर्गो देवस्य धी महि, जीवन ज्ञान=तत्सवितुर्वरेण्यंम ग्रथवा सारे मंत्र का ज्ञान करना, सारे मंत्र की साधना करनी कर्म रूप में लाना, सारे मंत्र को उपासना का साधन समझना।

सफलता के चिन्ह

सत्य भूषरण—जिन साधनों को ग्राप कराते हैं

उनकी सफलता के चिन्ह क्या हैं ? किसे ज्ञान होगा कि साधन ठीक हुआ है या हो रहा है।

प्रभु आश्रित—प्रारम्भिक चिन्ह साधना की सफलता का यह है :—

(१) जब साधक को अपने अन्दर के दोष दिखाई देने लगते हैं और उन दोषों को देख देख कर दुःख अनुभव करता है, परन्तु अभी छोड़ नहीं सकता और दूसरे के गुणों को देख देख कर प्रसन्न होता है परन्तु धारण नहीं कर सकता, यह सफलता का प्रारम्भिक चिन्ह है।

(२) जब अपने दोषों को बाहिर से सुनने की अपनी जानकारी के लिये इच्छा करता है कि मैं कहीं भूल में न रहूं और अपने दोष सुनकर सहन करता है, उबलता नहीं, क्रोद्ध में नहीं आता, लज्जा महसूस करता है जितलाने वाले का धन्यवाद करता है और उसके प्रति श्रद्धा पैदा होती है, दूसरे के गुणों को सुनकर वैसा बनने की इच्छा करता है और प्रयत्न करता है, यह सफलता का मध्यम चिन्ह है।

(३) अपने दोषों का सर्वथा त्याग कर देता है

और दूसरे के उत्तम गुणों को जो सुने या देखे उनको अपने अन्दर धारण कर लेता है यह साधना की सफलता का अन्तिम चिन्ह है।

साधना से कर्म

(१) अपने और अपना पन के जीवों के अतिरिक्त अन्यों के साथ जिन्हें वह अपना नहीं समझता, जिनके दुःख सुख का उस पर कोई प्रभाव नहीं उनके सुख कल्याण निमित्त कार्य करने पर—साधना से कर्म आचरण का आरम्भिक चिन्ह है।

(२) जब उस निष्काम शुभ कर्म से अपने चित्त की शुद्धि होने लगे अथवा हो जावे, तब उस साधना से कर्म आचरण का मध्यम चिन्ह है। यदि यह अवस्था नहीं आती तो समझना चाहिए पहली भूमि से आगे न बढ़ सकने में कोई दोष है जैसे विद्यार्थी मैट्रिक में पढ़ता हो और वर्ष भर पढ़ने पर परीक्षा में उतीर्ण न हो सके तो कोई न्यूनता उसमें रह गई थी।

(३) प्रभु देव की आशीर्वाद की प्राप्ति—यह अन्तिम चिन्ह सफलता का है। आशीर्वाद तब मिलती है जब कर्म प्रभु के समर्पण किया जावे जैसे यज्ञ हवन

में अन्त में कह देते हैं "इदमग्नये इदन्नमम"।

साधना से उपासना की योग्यता

(१) भक्ति व उपासना का प्रारम्भ नमस्कार से होता है। यह गुण क्रियात्मिक रूप में स्वभाव में आ जावे, यह प्रथम चिन्ह है।

(२) उपास्य देव की आज्ञाओं का पालन करना– यह दूसरा चिन्ह है।

(३) समर्पण से अपना और अपना आपा और अपना सर्वस्व अर्पण कर देना यह अन्तिम चिन्ह है।

हमारा भजन, जपतप आदि क्यों स्वीकार नहीं होते, उसका कारण है कि हम द्वेषी वाणी से बोलते हैं। द्वेषी वाणी वह होती है जो स्वार्थ और अहंकार से बोली जावे। निस्वार्थ और निरहंकार अर्थात निर्दोष और निर्मल वाणी आत्मा की होती है।

अथर्ववेद में जो महात्मय गाया कि गायत्री से आयु, प्राण, प्रजा, पशु, कीर्ति और धन मिलता है. यह सब नाशवान पदार्थ हैं। यह तो पशु को भी प्राप्त हैं। फिर इसका जप करने से विशेष लाभ ही क्या?

विशेष लाभ है ब्रह्मवर्चस की प्राप्ति–ब्रह्मतेज, जिसका काम है अन्दर की वासनाओं को दग्ध कर देना और बाहर के विषयों को अपने तेज प्रताप से समीप न भटकने देना और अन्त में परमेश्वर को प्राप्त करा देना।

यह गायत्री वरदा माता है। संसारी माता वर देती है आशीर्वाद। वह यह नहीं कह सकती कि मांग, जो तू चाहे क्योंकि उसके पास न आयु है न स्वास्थ्य, धन, प्रजा कीर्ति आदि न ब्रह्म वर्चस इसलिए वह आशीर्वाद दे सकती है। राजा जब प्रसन्न होता है कहता है माँग! वह सब कुछ दे सकता है जो उसके पास हो परन्तु वह सब नाशवान पदार्थ दे सकता है। गायत्री वर देती है प्रभु को सामने ला देती है। वर देने की आवश्यकता नहीं रहती। भक्त अपने को समर्पण करता है भगवान अपने को भक्त के समर्पण कर देता है।

———

षष्ठं प्रकाश

नमस्कार के लाभ

सत्य भूषण—नमः नमस्कार जो पहली योग्यता जो उपासना में है उसका भी कोई लाभ विशेष है या यह एक मंजिल है और समर्पण का रूप क्या है ? कैसे अपने को अर्पण करदे ।

प्रभु आश्रित—नमः मनुष्य साधक उपासक के स्वभाव में आ जावे तो चार प्रकार का बल उसमें आयगा । ब्रह्मबल, क्षात्रबल, वैश्यबल और शूद्र बल । विशेष रूप से जो उपासक का कार्य है उसमें वह बलवान होता जावेगा । यदि ब्राह्मण का काम करता है तो ब्रह्मबल प्रेम द्वारा, यदि क्षत्री का काम करता है तो क्षात्र बल—(न्याय शक्ति) वैश्य का काम करता है तो श्री बल को जन जनारदन का आश्रय बनायगा, दानी होगा । शूद्र का काम करता है तो सेवा स्वःभाव और सन्तोष तप बढ़ेगा ।

वमस्कार, (नमः) में वह शक्ति है कि अहंकार

को जहां अर्पण कराती है वहाँ प्रेम और आदर को बढ़ाकर स्वार्थ और कठोरता का त्याग कराती है। क्रोध को बदलती हैं, जितेन्द्रिय बनाती है। जब तक अहंकार हैं उतना सत्य का पालन कम होगा। जितना सत्य का पालन कम करेगा उतना जितेन्द्रिय कम होगा।

अब सुनो समर्पण के प्रकार और रूप

समर्पण शाब्दिक चीज़ नहीं है वह तो आचरण की चीज़ है, जिसके समर्पण हो वह वैसा हो जावे अर्थात् उसके गुण कर्म स्वभाव वैसे हो जावें। उदाहरण रूपेण—एक चुल्लू जल मीठा था समुद्र में अर्पण कर दिया तो वह चुल्लू भी समुद्र की तरह खारा हो गया। समुद्र का काम करेगा। यदि वह जल गङ्गा में डाल दिया तो वह भी मीठा हो जायगा। मद्य का कुम्भ गङ्गा में डाल दिया जावे तो वह सब गङ्गा जल ही बन जावेगा। ठीक इसी प्रकार जो प्रभु अर्पित हो गया तो उसमें प्रभु के गुण=सत्य कर्म, स्वभाव=दया, न्याय आ जावेंगे। यदि अर्पित मनुष्य असत्य बोलता है या क्रोध करता है अथवा अन्याय तो समझो उसका अहं अभी अपने पास है। समर्पित नहीं हुआ। अथवा प्रभु आश्रित बन जाए जिस प्रकार नन्हा शिशु माता

पिता के आश्रित है। माता पिता हरिद्वार जाने लगे, शिशु को कोई चिन्ता न हो, न ही उसके मन में यह सङ्कल्प अथवा विचार उठता है कि टिकट कैसे लूंगा। परदेश में खाना कहां खाऊँगा, डेरा कहां लगाऊँगा, वह निश्चिन्त है। सब कुछ उसके बिना सङ्कल्प के उसके माता पिता स्वयं करेंगे। ठीक आश्रित प्रभु का निश्चिन्त रहता है कि प्रभु सब में है। सब का प्रेरक गुप्त है। उस आश्रित को जहां ले जाना होगा, ले जायगा। उसकी आवश्यकताओं को पूरा करने वाले स्वयं करेंगे। वह आश्रित निश्चन्त है। यदि चिन्ता करता है तो वह प्रभु आश्रित अभी नहीं है

सत्य भूषण—समर्पण के कै प्रकार हैं ? माता पिता बालक की तो स्वभाविका बात है, आचरण इसमें कौनसा है ?

प्रभु आश्रित—समर्पण के तीन प्रकार हैं :— आश्रित, शरणागत और सर्मापित। माता पिता बालक की स्वाभाविक बात है। माता पिता को अपने बालक का ज्ञान है कि वह उनके आश्रित है, बालक को अज्ञान है। उसको अपना अहंकार अभी समझ में भी

नहीं आया। जिसे अपने अहंकार की समझ है वह अपने अहंकार को कैसे प्रभु आश्रित कर दे। यों समझो एक नदी बह रही है। यात्री नदी पार होता है। उसके एक बालटी वज़नी है। वह नदी से भरकर केवल कड़े को दो अंगुलियों में थाम रखता है और भरी बालटी नदी के पानी में रखता है और जब चलता है तो उसे लेश मात्र भी भार अनुभव नहीं होता। उसी नदी के सहारे वह अपने आप हलकी चली जाती है। यदि यात्री नदी से बालटी भरकर अपने आश्रय ले जाना चाहे तो कठिनाई से ले जा सकेगा। यह है आश्रित का रूप। माया में लिप्त होकर प्रभु पूजा न करे, हां माया से युक्ति युक्त होकर करनी पड़ेगी। संसार में रहते हुए अहंकार तो मनुष्यों में रहेगा। अहंकार माया का बना है और वह मायापति है। मनुष्य का जब तक शरीर है जो माया प्रकृति से बना है, प्रकृति माया से पलता है, बढ़ता है तब तक तो माया से युक्त होकर ही रहेगा। इसी से पूजा करेगा। भूमि और आकाश के भीतर बैठना, उठना, चलना, फिरना वायु का लेना रहेगा ही। इसी में रह कर ही भक्ति कर सकता है। इसी में रहकर उसे जान

सकता है। हाँ यदि माया में लिप्त हो जाए तो फिर पूजा नहीं कर सकता जैसे नाव में बैठकर जल के ऊपर से पार हो सकता है और यदि नाव में जल भर जाए तो वह पार नहीं हो सकता।

सत्य भूषण—माया तो जीव के साथ प्रभु ने क्यों लगा दी। संयोग का प्रयोजन ही क्या था ?

प्रभु आश्रित—योग दर्शन तो यह कहता है कि स्वः (प्रकृति) स्वामी (पुरुष) के स्वरूप को जानने के लिए ही संयोग बनाया। साधन पाद, सूत्र २३ :—

स्व स्वामि शक्तयोः स्वरूपोपलब्धि हेतुः संयोगः ॥

अर्थात—स्वः शक्ति (प्रकृति) और स्वामी शक्ति (पुरुष) इन दोनों के स्वरूप की प्राप्ति का जो कारण है वह संयोग है।

दृश्य का स्वरूप दृष्टा के ही लिये हैं, इस प्रकृति के साथ पुरुष का सम्बन्ध उन दोनों के रूप को जानने के लिये ही है। अतः उस दर्शन (ज्ञान) शक्ति से जब तक मनुष्य इस प्रकृति के नाना रूपों को देखता रहता है तब तक तो भोगों को भोगता रहता है। जब इनके

दर्शन से विरक्त होकर अपने स्वरूप दर्शन की ओर झांकता है तब स्वः स्वरूप का दर्शन हो जाता है।

(२) दूसरा समर्पण का प्रकार है शरणागत होना, जैसे नदी पार करनी हो तो नाव में यात्री बैठ जाता है अपना सब सामान भार गधे घोड़े आदि भी बालक परिवार सहित नौका में उतार खेवट को साधन बनाता है, खेवट केवल नौका चलाता है, ऊंच नीच नदी का प्रवाह और वायु की गति का जानकार है, परन्तु यात्री अपने सब माल की स्वयं संभाल रखता है और खेवट उसे पार कर देता है। यात्री अपना सब रखे हुए सामान को आप संभाला करता है और स्वयं ही वर्तता है, न वह खेवट के पास बेच देता है न फैंक देता है न उससे सम्बन्ध विच्छेद कर लेता है। ऐसे संसार में रहते प्रभु की सब प्रदत्त वस्तुओं को प्रयोग करता है, संभाल करता है, परन्तु अपने सब कुछ समेत पार होने के लिये प्रभु की धर्म रूपी नौका की शरण लेकर पार होता है। अपने अर्थ को धर्म के सहारे ले जाता है, अपनी बाग डोर खेवट के सपुर्द और विश्वस्थ होती है।

(३) तीसरा स्वरूप है अर्पित का—अपना अहं

पृथक न रखकर अपितु अपने अहं का स्वामी प्रभु को समझ कर उसी का कार्य उसी के लिये करना, तद्‌रूप हो जाना, तद रूप का अर्थ वैसे गुण कर्म स्वभाव वाला बन जाना जैसे निर्धन कुल की कन्या ने किसी धनी को वर लिया तब उसका नाम, स्थान, रूप, पद, पोदीशन सब बदल गई। कुमारी नहीं रही, विवाहित हो गई। झोंपड़ी नहीं रही, महल बासी हो गई, भवनों में रहने लगी, निर्धन नहीं रही, धनी बन गई जो उसका स्वामी है सो वही बन गई, अब रहेगी तो पति के घर में, कहलाएगी तो पति की, खाएगी, पिएगी तो पति का, काम करेगी तो पति का, संभाला करेगी तो पति की संपत्ति को पति के गृह को। अब जड़ का दृष्टांत—जैसे लोहे का गोला अग्नि की भेंट हो गया, अग्नि का रूप धारण कर लिया, अपना अस्तित्व रखते हुये भी अग्निमय नज़र आवेगा। प्रकाश ताप देगा, अपने अस्तित्व को उसी के अन्दर छिपा देगा, अपना पन प्रगट न करेगा।

सत्य भूषण—समर्पण तो अन्तिम चीज़ हुई उपासना की, ऐसा ज्ञान जब हो जावेगा सांसारिक आदमी कैसे साधन व्यवहार में करे ?

प्रभु आश्रित—सांसारिक मनुष्य तो अर्थ कमाता है, वह अर्थ को धर्म से कमाए, धर्म के बताने वाला वेद है और वेद ईश्वर का ज्ञान है, इसलिए संसार के साथ ईश्वर, वेद और धर्म को न चलाओ। अपितु ईश्वर सुख का सागर है और संसार दुःख का घर है। उक्ति है देखो ! अकेला न संसार में लिप्त हो ईश्वर को छोड़ कर। और न संसार को छोड़कर ईश्वर भजन में लगो ! दोनो को साथ साथ रखो फारसी के कवि शेख सादी ने कहा हैं :—

मन न गोयम कि अज़ दुनिया जुदा वाश।
वहर कारे कि बाशी बा खुदा बाश॥

अर्थात मैं नहीं कहता कि दुनिया को छोड़ दो अपितु प्रत्येक कार्य में ईश्वर को साक्षी रखो और संसार का व्यवहार करो तो दुःख न होगा या तुम दुःख से दुःखी न होगे। परमेश्वर के कार्य करते रहने से आत्मिक बल, मानसिक बल और बौद्धिक बल की वृद्धि होती रहती है। जीवन में ऐसे संकट आ जाते हैं जिन्हें दूर करने में मानवी शक्ति और बुद्धि हार जाती है, उस समय दैवी शक्ति की सहायता ही संकट से

निकाल सकती है, दैवी शक्ति के प्राप्त करने के लिये ही अनुष्ठान साधन का प्रयोग करना चाहिए। वह सब दैवी शक्तियां संसार के भंडार में विद्यमान हैं परन्तु किसी को मृत्यु से बचाने के लिये अनुष्ठान मत कराओ, लखपति करोड़पति बनने के लिये अनुष्ठान मत कराओ। मृत्यु अपने समय पर आती है, वह समय तुम्हारे ज्ञान में नहीं। लखपति करोड़पति यह सब पूर्व कर्मों का फल है, अनुष्ठान बड़ा अमूल्य साधन है बुद्धि सद्बुद्धि बन जावे तो सब मित्र बन जावेंगे, प्रभु अपना मित्र मालूम होगा।

सत्य भूषण—ईश्वर की साक्षी में संसार व्यवहार कैसे करें। ईश्वर को देखा नहीं।

प्रभु आश्रित—ईश्वर का रूप है धर्म—सत्य। जैसे दुकानदार के पास ग्राहक आता है और सौदा देते समय ग्राहक वस्तु के बताए भाव पर विश्वास नहीं करता तो दुकानदार झट कहता है मैं धर्म से सत्य कहता हूँ, यही भाव है, यही भाव है? तुम विश्वास करो। तब ग्राहक उसके इस धर्म और सत्य शब्द के बल पूर्वक कहने पर तुरंत विश्वास कर लेता है।

दुकानदार अन्दर से जानता है कि मैं असत्य बातें बोल रहा हूँ विश्वास करने वाला इस लिये विश्वास कर लेता है कि दुकानदार सत्य शब्द को आग्रह पूर्वक बोलता है जिस प्रकार दुकानदार असत्य बोलते हुये भी अपने अन्दर जान रहा होता है कि मैं असत्य बोल रहा हूं, यही सत्य है, इसी प्रकार वह सत्य और धर्म को अन्दर से झूठ बोलने की अपेक्षा सत्य बोले, यही परमेश्वर की साक्षी में व्यवहार करना है।

एक शिशु अपनी माता का आंचल नहीं छोड़ता, मां की गोदी से जुदा हुआ हुआ भी मां को बाँधे रखता हैं। संसार में रहते हुये भक्त साधक उपासक उस प्रभु की आंचल अर्थात सत्य को पकड़े रखे, कभी न छोड़े। आंचल एक रस्सी है, सत्य गुण है, गुण भी रस्सी को कहते हैं, तब ईश्वर माता की तरह भक्त बालक से बंधा रहेगा।

सत्य भूषण—रोगों के दूर करने के लिये नाना प्रकार की औषधियाँ प्रभु ने बनाई हैं, योग्य वैद्य, हकीम निर्धन गरीब लोगों को बहुत सहिल सुलभ सस्ती औषधि बताते हैं परन्तु अमीरों और धनियों को

मोती मूल्यवान औषधि देते हैं और साधु महात्मा तो भस्म से ही स्वस्थ कर देते हैं, क्या अध्यात्म रोगों की निवृत्ति के लिये कोई ऐसा उपाय नहीं है ?

प्रभु आश्रित—है, क्यों नहीं है। शारीरिक रोग प्रत्यक्ष होता हैं किसी कारण से लगता है, और वैद्य तथा साधु पर पूर्ण विश्वास होता है और रोग से मनुष्य बहुत व्याकुल होता है। व्याकुल दुःखी होने के कारण सच्चे हृदय से रोग निवृति का इच्छुक होता है। आध्यात्मिक रोग तो जन्म जन्मान्तर से साथ साथ लगा हुआ है, वह रोग नहीं उनका योग भोग के लिए है, अमर्यादा और अज्ञान के कारण से वह रोग बन जाता है और छिपा रहता है और सबको होने से और फिर सुख की प्रतीति होने से रोग नहीं समझा जाता जिसको यह सच मुच रोग दुःखदायी प्रतीत हुआ और वह व्याकुल हो गया तब उसे उसके उपाय ढूंढने और करने की जरूरत अनायास बन गई। लो ध्यान से सुनो ! तुम जानते हो कि परमेश्वर माया से ढका हुआ है और संसार काम क्रोधादि से ढका हुआ है। काम क्रोध रजोगुण से ढका हुआ है, मनुष्य संसार में

रहता हुआ, अपने आप को नहीं पहचान सकता। काम और कामनाओं से ओत प्रोत है, उस परमेश्वर का निज नाम ओम है, ओम का अर्थ हैं रक्षक। ओम् अव् धातु से बना है, अव् का अर्थ रक्षा करना है। एक और बात भी समझो। रक्षा किस की होती है, बलहीन, निर्बल, दुर्बल की। मनुष्य निर्बल दुर्बल क्यों बनता है, जब पाप करता है। पाप का अर्थ है पवित्रता से पतन करने वाला तो अव=पतन, गिरावट को भी कहते हैं। ओम् रक्षा करता है पाप से, पाप होते हैं काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार के कारण से और नाना विघ्न पैदा करते हैं। कामजत्त को, क्रोध मत को, लोभ सत को, मोह गत को, अहंकार महत्त को नष्ट करता है। उपासक साधक को सदा सावधान रहना चाहिए।

विघ्नों को दूर करने का उपाय

इन विघ्नों को दूर करने के लिये योग दर्शन में समाधी पाद सूत्र ३२ कहता है—तत् प्रतिषेधार्थमे "क तत्वाभ्यासः" अर्थात उनको दूर करने के लिये एक तत्व का अभ्यास करना चाहिए। वह एक तत्व क्या है सूत्र २७ में आया—तस्य वाचकः प्रणवः उस तत्व का नाम है 'प्रणवः' अर्थात ओम्। इस लिये प्रणव का

जाप करना चाहिए और वह कैसे करना है, सूत्र २८ में लिखा है 'तज्जपस्तदर्थ भावनम्'।

अर्थ स्वरूप परमेश्वर का चिन्तन करना चाहिए। और उस साधन से विघ्नों का अभाव और आत्मा के स्वरूप का ज्ञान भी हो जाता है चुनाँचि 'ततः प्रत्यक–चेतनाधिगयोऽप्यन्तराया भावः'।।

जब ओम् नाम और उसके अर्थ का जिस योगी को ज्ञान हो जाता है और वह एक तान जप करता है, चिन्तन और ध्यान करता है, तब परमात्मा को उस योगी पर अनुग्रह हो जाती है जिससे सब विघ्न भाग जाते हैं जैसे एक आदमी शीत से ठिठर रहा है उसने हाथों में दस्ताने पहिन लिये, पाओं में जुराव मोजे, बदन पर कोट गले में गुलूबन्द तब भी उसकी शीत नहीं दूर हुई, जब उसे ज्ञान हो गया कि यह शीत अग्नि से बुझेगी और वह अग्नि जलाकर अग्नि के समीप जाकर बैठा तो तत्काल समस्त शीत सब अंगो से दूर हो गई ऐसे ही ब्रह्म ओम् को जानना, अर्थ समझना फिर चिन्तन ध्यान से विघ्न भाग जाएंगे।

यह उपाय ईश्वर भक्ति के हैं, ईश्वर भक्ति की स्थूल, सूक्ष्म और अति सूक्ष्म विधियां हैं। भाव यह है

कि किसी एक वस्तु में चित्त को स्थित करने का बार बार यत्न करने से एकाग्रता उत्पन्न होकर विघ्नों का नाश हो जाता है। मैं अब एक स्थूल साधन बतलाता हूँ, उसका नाम है हंस मुख नाद। यह पहले मंत्र योग द्वितीय भाग में बतलाया जा चुका है कि कीर्तन और नाद (ओम की ध्वनि आदि क्रियाओं) से सतो गुणी परमाणुओं का आकर्षण उपासक के हृदय में होने लगता है। आकाश में तीन प्रकार के गुण सत्व गुण, रजो गुण, तमोगुण मौजूद हैं, इन गुणों से आकाश भरा पड़ा है। चूंकि संसारी लोगों की प्रवृति भोग में अधिक है इसलिये रजो गुणी और तमोगुणी परमाणुओं का बाहुल्य है, सतोगुणी परमाणु कम हैं। मनुष्य की जैसी प्रवृति होती है, वैसे परमाणु उसके अन्दर घुस जाते हैं और उथल पुथल मचा देते हैं मंत्र योग तृतीय भाग पृष्ठ ७३ से ८० तक इस नाद की विधि और उपयोग्यता लिखी है, इस विषय में और अधिक जानकारी देता हूं।

जो साधक नए गाना सीखने वाले के समान इस ओम् ध्वनि को पकाता रहता है और उसकी ध्वनि एक मिनट की हो जावे तो तीसरीबार ध्वनि करते

हुये आकाश में मनोवृति को ले जाने पर उसकी समाधि बन जाती है। सिवाए अपने अस्तित्व के साधक को कुछ भी ज्ञान अपने शरीर आदि तक का नहीं रहता। जितनी दूरी तक वह पहुंचेगा उतने लोक से विद्युत विशेष प्राप्त होगी जिसकी आभा हीरे की आभा के समान होगी। जब व्युत्थान अवस्था होगीं अर्थात प्राण शक्ति समाधि समाप्त हो जावेगी तब वह विद्युत विशेष अपने आप हृदय में प्रवेश कर जावेगी और मुख मंडल पर स्वयं मुस्कान बन जावेगी और इसी मुस्कान में साधक को एक ऐसा आनन्द आवेगा कि समस्त शरीर अन्दर बाहिर से आनन्द से भरपूर हो जावेगा और वह मुस्कान चुम्बक बनकर सतोगुणी परमाणुओं को आकाश वायु मंडल से खेंचती जावेगी। बाहिर के तमोगुणी, रजोगुणी परमाणु बाहिर ही पड़े रहेंगे जिस प्रकार चुंबक के सामने लोहा, चांदी, सोना की सुइयां पड़ी हुईं, हों तो लोहे वाली सूई उछल कर झट चुंबक से चिपट जावेगी। स्वर्ण रजित की पड़ी ही रहेंगी उनमें गति न आवेगी। इस विद्युत विशेष के दो लाभ होंगे बाहिर से सतोगुणी परमाणु को खेंचेगी और अन्दर की वासनाओं को यह चुंबक

दबाती, सुलाती, हटाती मिटाती और जलाती रहेगी। इन पांच अवस्थाओं में से जैसी जिस लोक की जितनी शक्ति की विद्युत होगी वैसी वैसी अन्दर क्रिया करती रहेगी। ऐसी अवस्था में साधक जितनी देर तक एकाग्र होकर बैठेगा, उतना लाभ लेगा। इस से सतोगुणी परमाणु का अन्दर बाहुल्य हो जाने से प्रति दिन के अभ्यास से चित्त अहंकार बुद्धि और मन सतोगुणी बनते जावेंगे। फिर कार्य भी अपने आप सतोगुणी ही संसार में होने लग जावेंगे। परन्तु एक बात याद रखनी चाहिए।

समाधि न टिकने का कारण

जिन लोगों का नाद एक मिनट से उपर तो हो गया है परन्तु समाधि नहीं टिकती उसका कारण 'मोह' है। मोह के कारण न समाधि टिकती है न विद्युत विशेष आती है। मोह तीन प्रकार का है।

(१) पुत्रेषणा—अर्थात शरीर, शरीर सम्बन्धी व्यक्तियों का मोह। ज्यों ही ऊपर ऊपर वृत्ति जाने लगी और अपने शरीर का भान भी न रहा तो डर जाते हैं कि शरीर न रहेगा मौत आ गई।

(२) वित्तेषरण का मोह—अर्थात धन सम्पत्ति का मोह लोभ के कारण।

(३) लोकेषरण का मोह—मान प्रतिष्ठा का मोह अहंकार के कारण।

यह मोह एक डोरी है जैसे लड़का पतंग को उड़ाता है और वह बहुत ऊंचा आकाश में चढ़ जाता है तो उससे संभाला नहीं जाता वह आप भी ऊपर खिचने लगता है इसलिये वह डोरी से पतंग को वापिस नीचे खींच लेता है।

सत्य भूषरण—जब तक समाधि न टिके तब तक क्या करे?

प्रभु आश्रित—कृत्रिम तौर पर ओम ध्वनि को मनः वृति के साथ आकाश में ले जावें जितनी दूर तक ले जा सकें ले जावें जब प्राण वापिस लौटें तब हृदय को काल्पनिक आह्लाद से भर दें और चेहरे पर मुस्कान बना लें। और उसे ऐसा हाला मुख पर प्रतीत हो जैसे बसंत ऋतु में बाटिका में जाने से एक विचित्र प्रकार के आह्लाद की आभा प्रतीत होती है और मन प्रसन्न हो जाता है, ऐसा बनाकर उस मुस्कान में मग्न

हो जावे तो उसकी बड़ी प्रसन्नता आनन्द प्रतीत होती रहेगी उसका लाभ यह है कि वह मुस्कान भी वाहिर के सतोगुणी परमाणुओं को खींचने में समर्थ होगी परन्तु अन्दर की वासनाओं को दवा, सुला, हरा, पिरा या जला नहीं सकती।

उस मकान अथवा स्थान में जहां ऐसी क्रिया का नित्य अभ्यास देर तक किया जाता रहेगा, उस स्थान के परमाणु भीं ऐसे आकर्षिक हो जावेंगे कि जो व्यक्ति वहां प्रवेश करेगा उस पर उस कृति से उसकी आकृति भी प्रसन्न हंस मुख बन जावेगी। शोक चिंताएं भाग जावेंगी जिस प्रकार संत महात्माओं के पास उदास दुःखी मनुष्य को दर्शन पात्र से शांति मिल जाती है, इसी प्रकार यहाँ भी होता है परन्तु

सावधान

इस कृत्रिम क्रिया में भी एक बात याद रखनी चाहिए कि यदि मुस्कान तो है परन्तु मन चंचल है इधर उधर भागता रहता है और हंस मुख बने बैठा रहता है तो वह अपने आपको लोगों से यश लेकर एक प्रकार का धोखा देना है दिखावा है, दम्भ है। वह

मुस्कान सतोगुणी परमाणुओं को तो बाहिर से नहीं खेंच सकती अपितु दम्भ के परमाणु दिखावे के परमाणु अहंकार अभिमान को पुष्ट करेंगे और बढ़ावेंगे अतः खूब सावधान रहना चाहिए अलवत्ता यदि मुस्कान में मन ठीक टिकरहा है तो उसका प्रभाव अन्तःकरण और स्थान दोनों पर पड़ेगा ।

सत्य भूषण—इस ओंकार नाद के बढ़ाने की कोई विधि सुगम भी है ?

प्रभु आश्रित—है । पहले श्वास ले लो, फिर नाद ज्यों ज्यों करो, पेट को पीछे (उड्डियान क्रिया) करते जाओ तो नाद बहुत लम्बा हो ज़ावेगा ।

दो प्रकार की क्रिया

क्रिया दो प्रकार से होती है, एक स्वगत और दूसरी परगत जैसे एक मकान में आग जलाई जाती रहती है तो उसका धुवां धीरे धीरे चाहे बाहिर भी निकल जाता रहता है मकान के अन्दर दीवारों और छत पर अपनी थोड़ी बहुत कालिख की छाप लगाता ही रहता है और कुछ समय पश्चात वह कालिख प्रत्यक्ष दिखाई देती है, यह है परगत क्रिया, इस विकृतिं वा बनावट

से आकृति बनती है।

दूसरी है स्वागत क्रिया जो मानसिक विचारों द्वारा होती है उसका प्रभाव गुण स्वभाव के रूप में उस स्थान पर पड़ता है जहां क्रिया की जाती रहे। उस स्थान का प्रभाव वहां आने वाले मनुष्य पर अवश्य पड़ेगा।

सत्य भूषण—आकाश में जितनी दूर तक जाकर समाधि टिकेगी उसका क्या अर्थ है। इस आकाश में द्यौलोक, स्वः लोक के आगे भी कुछ है ! क्या भूः भुवः स्वः लोकादि की सीमा भी कुछ निश्चित है ?

प्रभु आश्रित—लोक तो सात पढ़ते हैं प्राणायाम मंत्र में—भूः भुवः स्वः महः जनः तपः सत्यं और संध्या के मार्जन मंत्र में ही इन सातों लोकों के नाम लेकर अथवा प्रभु देव को भूः भुवः स्वः महः जनः तपः सत्यं के नाम पुकार कर पवित्रता की प्रार्थना करते हैं जैसे भूः पुनातु शिरसि, भुवः पुनातु नेत्रयो, स्वः पुनातु कण्ठे, महः पुनातु हृदयं, जनः पुनातु नाभ्याम्, तपः पुनातु पादयोः, सत्यं पुनातु पुनः शिरसि। इन लोकों के ब्रह्मांड में स्थान हैं और हम पिंड में चक्रो के

स्थान बना लेते हैं।

ललार	चक्र	भूः	सिर
आज्ञा	चक्र	भुवः	नेत्र
विशुद्धि	चक्र	स्वः	कण्ठ
अनाहत	चक्र	महः	हृदय
मणिपूरक चक्र, स्वाधिष्ठान चक्र		जनः	नाभि
मूलाधर	चक्र	तपः	पादयोः
सहस्रारदल	चक्र	फिर सिर	(सत्यं)

पिण्ड में सीमा हैं ही। पिण्ड है ब्रह्माण्ड का खाका (चित्र पट) यथा ब्रह्माण्डे तथा पिण्डे प्रसिद्ध उक्ति भी है। ब्रह्माण्ड की सीमाओं को मैं बतलाता हूं, मुझे अपना कुछ ज्ञान नहीं।

विद्वान लोग भी शास्त्रों के आधार पर लिखते हैं जिन्होंने ऐसी खोज निकाली है; पता नहीं किस किस ग्रन्थ से उनको ज्ञान हुआ होगा। योग दर्शन विभूति पाद से प्रतीत होता है कि ज्योतिषी लोग जो पञ्चाङ्ग बनाते हैं और गृह, नक्षत्र, सूर्य, चन्द्र, पृथ्वी और वायु आदि की गति का बयान करते हैं, वह उन ऋषियों

की विभूति है जिन्होंने सूर्य, चन्द्र, ध्रुव आदि में संयम किया अर्थात् धारण, ध्यान, समाधि लगाई जो उनकी स्मृति में यह ज्योतिष शास्त्र रचे हुए हैं।

विभूति पाद के २६ सूत्र में लिखा है 'भवन ज्ञानं सूर्ये संयमात्'' अर्थात् सूर्य में संयम करने से भवन अर्थात् खगोल का ज्ञान होता है।

(तत्प्रसादः सप्तलोकाः) उसका फैलाव सात लोक हैं। उनमें से भू केन्द्र से लेकर मेरू पर्वत की पृष्ठ तक जितना है वह (१) भू लोक है।

मेरू पृष्ठ से लेकर ध्रुव तक ग्रहनक्षत्र ताराओं से विचित्रित (२) अन्तरिक्ष लोक है। उससे आगे महेंद्र का तीसरा (३) स्वः लोक है। चौथा प्रजापति का (४) महः लोक है। आगे तीन ब्रह्म के लोक हैं जैसे (५) जनः लोक, (६) तपः लोक, और सत्यं लोक।

ब्राह्मस्त्रि भूमिको लोकः प्रजापत्यस्ततो महान।
माहेन्द्रश्च स्वरित्युक्तो दिवि तारा भुवि प्रजा॥
(इति संग्रह श्लोकः)

अर्थात् ब्रह्म का लोक तीन भूमि वाला, प्रजापति का महा लोक, महेन्द्र का स्वः लोक कहा गया है।

द्यौलोक में तारा है। तारा नक्षत्रों वाला लोक द्यौलोक है। प्रजाओं अर्थात् उत्पन्न होने मरने वाले प्राणियों का स्थान भूः लोक है। इस प्रकार भूः, भुवः स्वः, महः, जनः, तपः, सत्यं नाम से सात लोकों का सामूहिक भवन=खगोल है। इन सब लोकों में कैसे कैसे जीव प्राणी किस किस रूप में रहते हैं, क्या खाते क्या क्या करते हैं, बड़ा रोचक वर्णन है परन्तु यहां लिखने की आवश्यकता नहीं, न हम साधारण लोक संयम की विधि जानें, न योग्यता और न सामर्थ है।

ब्रह्माण्ड में संयम सूर्य, चन्द्र, ध्रुव आदि में कैसे किया जावे ? हम तो अभी अपने पिण्ड में उदान, समान, अपान प्राणों में, नाभि आदि चक्रों में भी पूर्ण पार नहीं पा रहे, हमें तो अपनी आवश्यकतानुसार जो जो मन्त्रयोग में आवश्यक है, उस पर अभी आचरण कर परीक्षण कर सफलता प्राप्त करनी चाहिऐ। वैसे तो सारा योग दर्शन विभूति पाद और साधन, समाधि पादों से भरा पड़ा है। हमें अपनी सामर्थ योग्यतानुसार ही थोड़े साधन करके जीवन उन्नत करना है। यदि कोई सज्जन ऐसी रोचक बातों को पढ़ना देखना चाहे तो वह 'पातञ्जल आर्ष योग

प्रदीपिका'—श्री पूज्य स्वामी ब्रह्ममुनि जी कृत पुस्तक से जो गोविन्दराम हासानन्द, नई सड़क दिल्ली से मिलती है, क्रय करके देख सकता है, मैंने यह इतना विवरण उसी पुस्तक से लिखा है।

आपकी जानकारी अथवा रूची बढ़ाने के लिये मैं आपका ध्यान उस मंत्र की ओर ले जाता हूं जिस से नित्य कर्म करने वाले प्रेमी प्रति दिन आहुति देते हैं और गायत्री जप करने वाले ११ ओम् से जप करते हैं वह मंत्र है 'आपो ज्योति रसोऽमृतं ब्रह्म भूर्भुवः स्वरोम्।' भूर्भुवः स्वः तो प्रत्यक्ष लोक हैं, उन से उपर आपः ज्योति रस अमृतम् क्या है? यह ब्राह्मी सृष्टि हैं आप=सूक्ष्म पंच तन्मात्रा या महः लोक जिन से विराट जगत बना तीन पाद अमृत हैं जिसे वेद ने कहा 'त्रिपादस्य अमृतं दिवि' वह हैं ज्योति-रस समष्टि अमृतम :—

समष्टि अहंकार	महतत्व	प्रकृति (साम्य अवस्था)
जनः	तपः	सत्यं

सत्य भूषण—आपने फरमाया जिस स्थान पर साधक हंस मुख क्रिया करता है, उस स्थान का प्रभाव

आगंतकों पर भी पड़ता है। यह तो ठीक है, तीर्थ स्थानों में ऐसी पवित्रता का भान किया गया है। क्या अभ्यास समय दूसरे पास बैठे मनुष्य का भी प्रभाव पड़ता है।

प्रभु आश्रित—हाँ ! मनुष्य स्थूल शरीर की छाया जैसे बाहिर रहती है ऐसे ही सूक्ष्म शरीर की भी छाया तो न्यून प्रकाश में अधिक और अधिक प्रकाश में न्यून हो जाती है। ठीक मध्यान्ह में बहुत छोटी होती है। छाया अपने पाओं तले रहती है बहुत छोटी। इसलिए जब मनुष्य बैठता है तो जितने घेरे मे वह बैठता है, उतने घेरे में उसकी छाया रहती है परन्तु सूक्ष्म शरीर की छाया साधारण मनुष्य की बैठे हुये उतनी होती है जितनी वह आसन लगा सामने सिर को झुकाकर नमस्कार करे, उतनी दूरी तक अर्थात एक हाथ भर (१८ इंच)। मनुष्य के सूक्ष्म शरीर की छाया मनुष्य के चारों ओर १८-१८ इंच रहती है प्रत्येक मनुष्य में सत, रज, तम मौजूद किसी में रज अधिक, किसी में तम किसी में सत और किसी में मिश्रित। बैठा हुआ मनुष्य चाहे कोई भी विचार मन में न कर रहा हो तब भी जो जीवन उसका है जिसे लोग चिन्हित

संकेत करते हैं कि यह व्यक्ति ऐसा है ऐसा है वह छाया गुण या अवगुण रूप में घेरा उसके चारों ओर डाले रहती है। उसका प्रभाव दूसरे पर पढ़ता है। जो १८ इंच के अन्दर अन्दर पास बैठता है अगर निकृष्ट विचारों का है तो समीप वाले पर बुरा प्रभाव पड़ता है (यह प्रायः अनुभूत है) साधक को बहुत ध्यान रखना चाहिए, साधक की एक और बात का भी ध्यान रखना चाहिए। जैसे मनुष्य के मुख से निकले शब्द ईथर द्वारा फैल जाते हैं और सुनने वाले उन शब्दों में बोलने वाले के आकार और भाव को तत्काल भान कर लेते हैं ऐसे सूक्ष्म प्रभाव भी सूक्ष्म रूप से पड़ता है। उदाहरण—ज़ब मनुष्य कोई विचार विशेष, बुरा अथवा भला अपने मन में करता है तो वह विचार दो प्रकार का होता है, एक भावना मात्र से दूसरा किसी के प्रति उसका आकार सामने लाकर। जब मनुष्य किसी का अनिष्ट चिन्तन करता है तो जिस के प्रति करता है वह विचार एक मूर्ति बनाकर उन व्यक्ति के पास तक पहुँचेगा और वह सोया हुआ है अथवा रिक्त मन है तो उसके अन्दर दाख़िल हो जावेगा। प्रायः वह विचार अवचेतन अवस्था में उसके अन्दर घुस

जगता है और पड़ा रहता है। जब कोई बार बार अनिष्ट चिन्तन करता है तो वह उसमें घुसता रहेगा, एक दिन प्रबल होकर उस व्यक्ति में शत्रुता पैदा कर देगा। दूसरा यदि किसी बहुत पवित्र आत्मा के प्रति दुर्भावना की गई हैं तो वह तो उसे स्वीकार नहीं करेगा, वह लहरें विचार तरंगें वापस लौटकर उसी व्यक्ति के पास आकर उसे दुःखद बन जावेंगी। यह कोई मत समझे कि बुरा विचार अनिष्ट चिन्तन वाणी से प्रगट नहीं किया गया और किसी और को उसका ज्ञान भी नहीं कि वह जाकर कह देगा निश्चित मत रह यह सूक्ष्म विचार सूक्ष्म रूप से भी बेतार तार की भांति प्रभाव डालते हैं। इसी प्रकार सब प्रकार के अच्छे बुरे विचारों और वासनाओं को समझ लेवे।

स्वप्न द्वारा एक दूसरे का मेल दर्शन आदि हो जाते हैं, यहां तक कि अगर यह वासनाएं बार बार उठने वाली इस जन्म में पूरी न हों तो आगामी जन्म में शत्रुता अथवा प्रेम का मेल कराती हैं।

सप्तम् प्रकाश

ओ३म् चिन्तन

सत्य भूषण—हंस मुख नाद की ध्वनि है तो बहुत सुगम, परन्तु जिसका श्वास इतना लम्बा न हो सके और फिर मोह का बंधन भी लगा दिया कि चाहे नाद दो मिनट का भी हो जाए तो भी मोह वाले की समाधि न टिकेगी, फिर तो कृत्रिम क्रिया ही रह गई, तो केवल मात्र ओ३म् का जप कहें तो हजारों कर सकते हैं क्या उससे लाभ न होगा; इष्ट सिद्धि न होगी ?

प्रभु आश्रित—वत्स ! सब कार्य अपनी इच्छा और सहूलियत के अनुसार कैसे फल दे सकते हैं ? ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका में महर्षि स्वामी दयानन्द जी महाराज उपासना विषय में लिखते हैं कि जिस योगी को ओम् और उसके अर्थ का ज्ञान हो गया है, उसे 'तज्जपस्थ तदर्थ भावनम्' उस ओंकार का जप और उस के अर्थ परमात्मा का नित्य चिन्तन अथवा ध्यान करना चाहिए इस प्रकार उसका चित्त एकाग्र हो

जाता है।

सत्य भूषण—तो यह कौन सा कठिन कार्य है? ओम् का अर्थ ऐसे जप में तो केवल रक्षक ही लिया जाता है।

प्रभु आश्रित—रक्षक तो उसका अनुवाद है, यहां अर्थ से अभिप्राय वह वस्तु है जिसकी ओर वह शब्द संकेत करता है, इसलिए ओ३म् वस्तु को समझना और जानना है। ओम् शब्द का अर्थ रक्षक है।

सत्य भूषण—तो वस्तु ओम् क्या है?

प्रभु आश्रित—ओम् नाम है ब्रह्म का, ब्रह्म वस्तु या ओ३म् अक्षर है। ओम् इत्येतदक्षरम्, अर्थात ओ३म्–इति–एतत्–अक्षरम् जिसका क्षय न हो न क्षीण होने वाला, गुण कर्म स्वभाव से परिवर्तित न होने वाला और एक रस निर्विकार अविनाशी एवं व्यापक, चेतन देव है।

सत्य भूषण—तो जब तक ओ३म् वस्तु को न समझ अथवा जान सकें तब तक ओ३म् का जप व्यर्थ है, उसकी समझ कैसे आवे?

प्रभु आश्रित— यजुर्वेद अध्याय ११ मन्त्र में १ आया

युञ्जानः प्रथमं मनस्तत्वाय सविता धिया अग्नि ज्योतिर्निचाय्य पृथ्याऽध्याभरत् ॥

अर्थात् योग को करने वाला मनुष्य तत्व अर्थात् ब्रह्म ज्ञान के लिए जब अपने मन को पहले परमेश्वर में युक्त करता है तब परमेश्वर उसकी बुद्धि को अपनी कृपा से अपने में युक्त कर लेता है। फिर वह परमेश्वर के प्रकाश को निश्चय करके परमात्मा को अपने मन में यथावत धारण करता है पृथ्वी के बीच में, योगी का यही प्रसिद्ध लक्षण है।

[ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका—उपासना विषय]

मन लगाना तो जीव साधक का काम है अपने प्रयत्न से और बुद्धि को प्रकाशित और अपने में लगाना परमेश्वर का काम है। बुद्धि में पूर्ण रूपेण समझ आना यही प्रकाशित होना है।

सत्य भूषण—फिर मन के लगाने की विधियां तो आप बतला रहे हैं, हमारा ध्यान फिर नही लगता।

प्रभु आश्रित—यही तो शिकायत रहती है। मन में जब तक अहंकार रहता है तब तक यह नहीं लगता। जब अहंकार इससे निकल जावे तब ढीला हो जाता है। इसमें फूंक वायु अहंकार की भरी रहती है जैसे

रबड़ के गोले में वायु भर लेते हैं अकड़ा रहता है। फूंक निकल जावे तो ढीला हो जाता है। ऐसे मन से अहंकार खारिज करके ढीला बनाया जावे तब परमेश्वर में मन लग जावेगा।

प्रभु की स्तुति प्रार्थना और उसकी शक्तियों का बार बार स्मरण करने से मन ढीला पड़ जाता है तब प्रभु में व्याकुलता सेवा आशा से प्रेम से लग जाता है। प्रार्थना मन्त्रों को त्वरता से पढ़कर फसाद न निकालना चाहिए। जब उपासना के लिए बैठो तब धीरे धीरे मन्त्र का उच्चारण करो और पुनः पुनः उसके अर्थ और आचरण को दोहराओ। तब मन पर प्रभाव पड़ता है। फिर प्रभु कृपा होती है और बुद्धि में प्रकाश होता है। वह प्रकाश कैसे होता हैं? क्या होता है? बुद्धि में जो खोट है, उसका पश्चाताप होने लगता है, रुदन होने लगता है। मानो प्रभु की शक्ति का अनुभव अथवा प्रतीति हो रही होती है। यही प्रकाश है। जब खोट विकार निकलता है तब साधक का प्रभु में विश्वास, श्रद्धा, प्रेम बढ़ता है। यही परमात्मा का अपने में धारण करना है।

जिस साधक का प्रत्याहार जितना पक्का न होगा उतनी ही उसकी धारणा, ध्यान, समाधि कच्ची रहेगी। जितनी समाधि कच्ची होगी, उतनी प्रज्ञा निर्बल होगी। मैं बतला चुका हूं साधक साधना से उपासना के योग्य बनता है। उपासना से ब्रह्म ज्ञान आत्म ज्ञान की प्राप्ति होती है। वह साधना पीछे भी बताई गई है। और भी फिर सुनिए।

आहार साधना संयम से, व्यवहार साधना सत्य और न्याय की कमाई से, विचार साधना ईर्ष्या घृणा रहित होने से, आचार साधना कटु कठोर असभ्य अशुभ वर्ताव रहित चलन बनाने की अभी पर्याप्त है। इतने अभ्यास के लिये वर्प दो वर्ष अथवा छः मास के लिए व्रत करना चाहिए, प्रतिज्ञा करनी चाहिए।

समस्त संसार को बाढ़ लगी है ओ३म् की। ओ३म् का अर्थ रक्षक है। प्रत्येक गृह उपगृह को बाढ़ लगी है विद्युत की, इसलिए कि वह अपने गृह की रक्षा करती है।

एक दूसरे से कभी नहीं टकराते। पृथ्वी को बाड़ जल की हैं। मानव शरीर आत्मा की बाड़ है बलकि

आत्मा की बाड़ आनन्द मय कोष है और आनन्दमय कोष की बाड़ विज्ञान मय कोष और विज्ञानमय कोष की बाड़ मनोमय कोष और मनोमय कोष की बाड़ प्राणमय कोष और प्राणमय कोष की बाड़अन्नमय कोष है। शरीर के अन्दर रक्त की बाड़ नस नाड़ियां हैं। ऐसे ही शरीर का बीज ब्रह्मचर्य है, इसकी बाड़ तप है। बिना बाड़ खेती उजड़ ज़ाती है। ऐसे तप के बिना ब्रह्मचर्य खण्डित हो जाता है।

मन का बीज शिव सङ्कल्प और बाड़ सत्य है। सत्य के बिना शिव सङ्कल्प भंग हो जाता है।

बुद्धि का बीज धर्म है, बाड़ विवेक ज्ञान है। ज्ञान के बिना धर्म सुरक्षित नहीं रह सकता।

आत्मा का बीज परमात्मा है और बाड़ वैराग्य है। बिना वैराग्य परमात्मा में अनुराग नहीं हो सकता।

मनुष्य के जीवन की सफलता की बाड़ प्रतिज्ञा है। विना प्रतिज्ञा जीवन यात्रा सफल नहीं हो सकती। इसलिए किसी मनुष्य को प्रतिज्ञा से घबराना न चाहिए।

सत्य भूषण—आप की सब बातों का निष्कर्ष

यह हुआ कि मन को साफ शुद्ध करने के लिये प्रतिज्ञा करे, उन साधनों की जिनसे मन शुद्ध होता है। भला, जिन के मन नितान्त शुद्ध, पवित्र, सरल होते हैं जो असत्य बोलना ही नहीं जानते, चोरी करने का ज्ञान नहीं उनका भी मन नहीं लगता जैसे छोटे निष्पाप बालक, जङ्गलों के वासी अपढ़ जन।

प्रभु आश्रित—तो क्या पशु झूठ बोलते हैं। बेइल्म नतुवां खुदाराशनाख्त—अर्थात ज्ञान के बिना प्रभु को नहीं जाना जाता। मन को तो लगाना है। वह प्रभु में लगता नहीं क्योंकि विषयों में लगा हुआ है। विषयों का यथार्थ ज्ञान हो जाए तो वह परिणाम से दुखदाई प्रतीत हों। तब मन उनमें न जाए। समझ तो बुद्धि में आनी है। बुद्धि ज्ञान से शुद्ध होती है। गायत्री मन्त्र की साधना तो है बुद्धि की शुद्धि और सद् बुद्धि की प्राप्ति के लिए।

सत्य भूषण—ठीक! अब समझ आ गई। अब कोई ऐसा उदाहरण दीजिए कि ओ३म् का अर्थ शब्द में जो रक्षक है वह पदार्थ रूप से कैसे दिमाग़ में ओ३म आए।

प्रभु आश्रित—आप को किसी ने कहा कि देवदत्त को बुलालाओ। वह पूछेंगे देवदत्त कहां रहता है, किस स्थान का है, किस मार्ग से जाऊँ। अब मार्ग और स्थान उसके रहने का बता दिया गया, आप ठीक ठीक मार्ग से गए और वहां स्थान पर जा पहुँचे सब चिन्ह बराबर पाए, अब देवदत्त अन्दर है, आप बुलाते हो आप शब्द से देवदत्त ! देवदत्त पुकार रहे हो। उसने आवाज दी, जवाब दिया, बाहिर से आप प्रश्नोत्तर करते रहे मगर उसने दर्शन नहीं दिया, दूसरी बार आप को कहा गया देवदत्त को बुला लाओ। आपको अब मार्ग और स्थान पूछने की आवश्यकता नहीं रही, आप तुरंत आसानी से उसके घर पहुंच गए, आवाज़ दी कोई और जबाब देने लगा तो आप जान गए यह देवदत्त नहीं बोल रहा। आपने कहा देवदत्त जी को बुलाइए। देवदत्त आ गया, अब बोला, तो आपने पहिचान लिया कि ठीक यही देवदत्त की आवाज है। अब वह बाहिर आया आपने देख लिया। तीसरी बार आपको भेजा गया, आपने जब आवाज़ दी तो आपके मस्तिक में देवदत्त का आकार पहले आ गया यह है अर्थ। अब योगी जब ओम् के अर्थ को जान जाता है

तब वह उसका जप ध्यान चिन्तन करता है तो वह ओम् का जप है।

सत्य भूषण—खूब समझ में आ गया कि अर्थ का क्या अभिप्राय है। अब क्या आप उस ओम् अक्षर को समझा सकते हैं ?

प्रभु आश्रित—यह समझना भी तो शब्दों में होगा, जमीन पर अथवा कागज पर लकीर डाल कर तरख्वान जबान से बता रहा हैं कि हथोड़ी को लेकर ऐसे ऐसे लकड़ी को चीरो, काटो असल समझाना सिखाना और सीखना तो है तरख्वान ने हथोड़ी या तेशा लिया, लकड़ी को पकड़ कर साम्हने काट दिखाया। अब सीखने वाले को पता लगा—हथोड़ी ऐसी होती है, ऐसे पकड़ी जाती है, लकड़ी ऐसे होती है; ऐसी रखी जमाई जाती है, फिर उस पर ऐसे ऐसे हथोड़ी लगाई जाती है और वह कट कर ऐसे वन जाती है। ब्रह्म तो निरवयव है और अव्यक्त है फिर भी जिसे उपनिषद कारों ने लिखा और व्याख्या की है, उसके बल पर, आधार पर, समझने की चेष्टा करूँगा।

यह जगत जो हम को दीख रहा है और जो नहीं

दीख रहा । क्या दीख रहा है ? 'भूर्भुवः, स्वः ।' और क्या नहीं देख रहा 'महः जनः तपः और सत्यं' यह दो प्रकार का है—एक विकार आत्मक दूसरा ज्ञान आत्मक ।

पृथ्वी आदि लोक लोकांतर तो हुआ विकार आत्मिक और वेद शास्त्र हुये ज्ञान आत्मक । यह उस ओम् अक्षर अविनाशी निरवयक का उप व्याख्यान है । अब पहले तुम ब्रह्म और ब्रह्माँड के समझने से पहले अपने पिंड और जीवात्मा को समझो । पिंड में शरीर और इन्द्रियाँ प्रत्यक्ष दीख रही हैं जैसे लोक लोकांतर नहीं दीख रहे जिन के द्वारा यह इन्द्रियां काम कर रही हैं वे हैं मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार और जीवात्मा भी नहीं दीख रहा परन्तु किसी को इनके होने में इनकार नहीं । जब मनुष्य सोकर उठता है और कहता है मैं आज खूब सोया, यह 'मैं' जो जिह्वा से बकवा रही है वही 'जीव' है । फिर कहता है, एक काम में मेरा मन नहीं लगता, मेरी 'बुद्धि' पर पता नहीं क्या परदा पड़ गया है, समझ नहीं सकती, आज मेरा 'चित्त' बड़ा उदास है. मैं मनुष्य हूं पशु नहीं, यह 'अहंकार' है । और प्रत्येक मनुष्य की तीन

अवस्थाएं हैं—जाग्रत, स्वप्न, सुशुप्ति। चौथी अवस्था

भी होती है परन्तु सब की नहीं, योगी की 'तुर्या'। यह जीव पिंड में रहने वाला जब जाग्रत में होता है तो बाह्य बुद्धि से काम करता है संसार के, और करता है शक्तियों के द्वारा। वह शक्तियाँ १९ हैं—पांच ज्ञान इन्द्रियां; पांच कर्म इन्द्रियां पांच प्राण और चार अन्तःकरण के द्वारा। और कितने अंगो वाला है—सात अंगों वाला है। यह सारा शरीर सात चक्रों से बंधा है (१) आज्ञा चक्र, (२) विशुद्धि चक्र, (३) अनाहत चक्र, (३) मणिपूरक चक्र, (५) स्वाधिष्टान चक्र, (६) मूलाधार चक्र और (७) सहस्रारदल चक्र। जीव आत्मा की शक्ति इन खण्डों में रहकर काम करती है। जीवात्मा क्या करता हैं जाग्रत में ? इस स्थूल शरीर की स्थूल रूप से पालना और रक्षा करता है अब इसकी दूसरी अवस्था है स्वप्न की—तब स्थूल शरीर तो सो जाता है, सब बाह्य इन्द्रियाँ सो जाती हैं अपितु जब स्वप्न आता है तो आप देखते हो अन्दर भी प्रकाश होता है परन्तु बोलना, चलना, खाना, देखना, सुनना आदि सब

व्यवहार हो रहे हैं। महल के महल खड़े हो जाते हैं, अगणित मनुष्यों की कतारें—देखी जाती हैं बस अवस्था में भी यही सात अंग और उन्नीस शक्तियां काम करती हैं, वहां सुख दुःख, हर्ष और शोक का भी ज्ञान होता है। तो सूक्ष्म रूप, सूक्ष्म इन्द्रियों द्वारा पालना रक्षण हो रहा होता है। तीसरी अवस्था है सुशुप्ति की—जिस में सब इन्द्रियों शक्तियों का अभाव है, यहाँ कारण शरीर में आनन्द भोग हो रहा होता है। एक वृति निद्रा, एक चेतन स्वभाव चेतन आत्मा के सिवाए और कुछ काम नहीं करता।

ये अवस्थाएं तो सब मनुष्यों के साथ प्रतिदिन बीततीं हैं। अब परमेश्वर को समझने के लिये भी यह चार प्रकार या अवस्थाएं हैं। एक को जाग्रत स्थानी, दूसरे को स्वप्न स्थानी, तीसरे को सुशुप्ति स्थानी—इन तीनों में प्रकृति के साथ संबंध जोड़ने से पता लगता है। और चोथी अवस्था परमेश्वर या ओम्कार की विल्कुल अपनी ज़ात (सत्ता) के साथ संबंध रखती ह यहाँ मस्तिष्क बुद्धि नही पहुँच सकती उसका नाम 'एकात्म प्रत्यय सारः' कहते हैं। एक आत्म भाव जिसकी

प्रतीति हो सकती है जो वर्णन नहीं हो सकता अकथनीय है, न वह देखने में न व्यवहार में, न ग्रहण करने में, न लक्ष करने में, न उपदेश, न चिन्तन से ज्ञात होती है वह शांत, शिव और अद्वितीय है।

तीन प्रकार का ज्ञान—ज्ञान तीन प्रकार से होता है। इन्द्रियों द्वारा जो ज्ञान होता है उसे 'साक्षात' कहते हैं (आंख, कान, नाक आदि से)। जो ज्ञान दुःख सुख चिन्ता, उदासी का मन और बुद्धि द्वारा होता है उसे 'अनुभव' ज्ञान कहते हैं। और जो ज्ञान अहंकार, चित्त और आत्मा से होता है उसे प्रतीति ज्ञान कहते हैं, जहां इन्द्रियों मन, बुद्धि की पहुंच नहीं जैसे आत्मा परमात्मा का ज्ञान सब प्रतीति मात्र होता है। स्वयं मन बुद्धि चित्त अहंकार का भान भी प्रतीति से होता है।

अब इन चारों को कैसे कैसे समझा जावे। माण्डूकोपनिषद कार जो ब्रह्म ज्ञान का उपनिषद है, ओमकार अक्षर को बताया है पहली अवस्था जाग्रत स्थानी है, दूसरी स्वप्न, तीसरी सुशप्त अवस्था, चौथी एक आत्म सार, अकथनीय अचिंतनीय।

ओम् शब्द और तीन मात्राओं में लिखे हुये अशुभ

को अभी काल्पनिक रूप से अपने मस्तिष्क में बिठाओ कि अ पहली मात्रा वाला ओमकार या ब्रह्म जाग्रत स्थानी है दूसरी मात्रा उ वाला ब्रह्म स्वप्न स्थानी है, तीसरी मात्रा 'म्' वाला ब्रह्म सुशुप्त स्थानी है। चौथी मात्रा विराम कहलाती है जो जाग्रत से पहले थी, अभाव प्रतीति में और अन्त में अभाव प्रतीति है जो मूक की रसना वाली बात है।

अब दूसरी बात दिमाग में बिठाओ कि महाप्रलय के बाद जब यह ब्रह्माण्ड खड़ा किया; रचा तो उस ब्रह्म ने जाग्रत बुद्धि से रचा होगा और जाग्रत बुद्धि बाह्य का काम करती है तो उसका नाम वहिः प्रज्ञा हुआ। ब्रह्माण्ड जब शरीर हो गया तो उसके अंग होने चाहिएं तो इस ब्रह्माण्ड खगोल के सात अंग भूर्भुवः स्वः महः जनः तपः सत्यं पीछे बता आए हैं तो सप्तांगी कहलाया और जिन शक्तियों से संसार रचा वह उन्नीस हैं।

उनके नाम भी सुन लो—यह स्थूल जगत पृथ्वी, अग्नि वायु, आकाश हमारे सामने हैं जिसमें हम सब प्राणी अप्राणी रहते हैं। इनको बनाया। पंच तन्मात्रा पांच सूक्ष्म भूतों से। (१) गंध तन्मात्रा, (२) रस

तन्मात्रा, (३) रूप तन्मात्रा, (३) स्पर्श तन्मात्रा और (५) शब्द तन्मात्रा। वे पांच तन्मात्राएें पैदा हुईं अहंकार से (६) अहंकार के तमोगुण भाग से या निकृष्ट भाग से, सत्व प्रधान भाग से पाँच (११) समष्टि ज्ञान इन्द्रियां और रजोगुणी भाव से पांच (१६) समष्टि कर्म इन्द्रियाँ और सतरज प्रधान से समष्टि (१७) मन बना और अहंकार उत्पन्न हुआ (१८) महतत्व से और महतत्व बना साम्य (१९) प्रकृति से अर्थात इन उन्नीस सूक्ष्म शक्तियों ने स्थूल जगत बनाया। (१) प्रकृति (२) महतत्व (३) अहंकार (४) समष्टि मन (५) समष्टि ज्ञान इन्द्रियां, समष्टि कर्म (१४) इन्द्रियां और पंच (१९) तन्मात्राए १९ इनका काम है स्थूल जगत की पालना और रक्षा करना।

दूसरी अवस्था स्वप्न स्थानी में बाह्य प्रज्ञा के बजाए अन्तः प्रज्ञा और स्थूल जगत की पालना रक्षा करने की बजाए सूक्ष्म जगत का संस्थापन।

तीसरी अवस्था सुशुप्त की वह प्रकृति की साम्य अवस्था है ब्रह्म की प्रज्ञा घनी भूत, केन्द्री भूत या गढ़ प्रज्ञ राकी भूत कहलाती है और वह लोक नाम रूप को छोड़कर एकांगी प्रति सूक्ष्म अव्यक्त प्रकृति का

पालक आनन्द भुक् कहलाता है, उस समय प्रभु की चेतन मना शक्ति ही प्रमुख होती है।

अष्टम् प्रकाश

गायत्री के सम्बन्ध में फुटकर बातें

सत्य भूषण—(१) बुद्धिमान कहते हैं कर्म करना ही श्रेष्ठ है, कर्म को यज्ञ के रूप में करो और जप करने की जरूरत क्या? कृपया इस द्विधा का समाधान कीजिये।

प्रभु आश्रित—अस्ति और शक्ति दो चीजें हैं परन्तु अन्योऽन्य आश्रित हैं। जहां अस्ति है शक्ति नहीं, वहां अस्ति को कोई नहीं पूछता और जहां शक्ति है अस्ति नहीं, वहां शक्ति निर्मूल्य है। गणित के दृष्टाँत से समझो—१ का अंक है इसकी अस्ति तो है परन्तु

शक्ति नहीं और ० शून्य शक्ति तो है परन्तु उसकी अस्ति नहीं। जब दोनों मिल जावें तो १० हो जाते हैं अर्थात् शून्य अस्ति १ साथ मिलकर दस गुणा प्रगट होती है।

ऐसा परमात्मा की अस्ति है, प्रकृति उसकी शक्ति है। परमात्मा और प्रकृति दोनों मिलकर समस्त संसार को प्रगट कर रही हैं और कार्य कर रही हैं। जीवात्मा निष्क्रय है परन्तु चित्त में व्याप्त होकर कितने महान कार्य कर लेता है। इधर प्रकृति द्वारा सब कार्य होता है परन्तु नाम परमेश्वर का लिया जाता है और इधर प्रकृति द्वारा सब कार्य होता है तो नाम जीवात्मा का लिया जाता है।

इसलिए जप से अस्ति का और यज्ञ से शक्ति का विकास होता है। कैसे ?

जप का भूर्भुवः स्वः आचरण में लाने के लिए है यज्ञ के रूप में।

'तत्सवितृर्वरेण्यम्—'अस्ति के विकास के लिए है, अल्प महान के अर्पण हुआ, महान बन गया।

'भर्गो देवस्य धीमहि'—शक्ति के विकास के लिए है।

'धियो यो नः प्रचोदयात्'—अस्ति की शक्ति को प्रगट करने के लिए है, शक्ति का अर्थ पवित्रता है; अस्ति का अर्थ है ज्ञान।

'यज्ञ का भूर्भुवः स्वः'—बाह्यरूप सम्पत्ति के विकास के लिए है, उसका निहित रूप अग्नि आत्माग्नि जगाने से शक्ति के विकास के लिए बन जाती है।

सत्य भूषण—क्या गायत्री जाप कामनाओं की पूर्त्ति करता है ?

प्रभु आश्रित—गायत्री का उपासक यह विश्वास रखे कि शुद्ध अन्तःकरण से जिस जिस आवश्यकता के लिए जप और प्रार्थना करेगा उसकी पूर्ति अवश्य मेव प्रभु प्रेरणा से गुप्त रूप से होती जायगी। प्रेरणा बुद्धि में होती है। प्रेरणा के अनुकूल मनुष्य की बुद्धि पुरुषार्थ करने लग जाती है। अपने विश्वास में डाँवां-डोल न हो, शंकित न हो। व्याकुलता से जप करे जिससे वह एक तार होकर कर सके। केवल अन्नमय कोष से अथवा प्राणमय कोष से ऊपर ऊपर बाह्य वृत्ति से न करे।

सत्य भूषण—योग अभ्यास के इच्छुक साधक से

(१) योग क्या मांगता है, (२) क्या सिखाता है, (३) क्या देता और (४) क्या बनाता है ?

प्रभु आश्रित—१. योग माँगता है, दृढ़ता, विमर्षता और एकाग्रता ।

२. योग सिखाता है—दम, शम, सयंम ।

३. योग देता है—वरदान—क्या वरदान ? जो मांगो ! क्या मांगें ? मांगें—(१) ऋद्धि, (२) सिद्धि और (३) नवनिद्धि ।

अथवा मांगें—[१] अनुभूति [२] विभूति और समापत्ति ।

अथवा मांगें—ईश्वर या ऐश्वर्य ।

४. योग वनाता है—[१] स्थित प्रज्ञ, [२] जीवन मुक्त, विदेह प्रकृति अथवा प्रकृतिलय ।

१. दृढ़ता किस की हो ?—आसन की ।

१. विमर्षता किस की हो ?—काम वासना की ।

३. एकाग्रता किस की हो ?—मन की ।

१. आसन क्यों दृढ़ नहीं होता ?–मोह के कारण

२. विमर्षता क्यों नहीं होती ?–तप के अभाव के कारण

३. एकाग्रता क्यों नहीं होती ?–व्यवहारिक लोभ के

कारण ।

सत्य भूषण—मन क्षिप्त विक्षिप्त रहता है, इनमें से कैसे सिद्धि हो ?

प्रभु आश्रित—सिद्धि होगी अपनी उत्कट इच्छा और गुरु कृपा से ।

सत्य भूषण—गुरु कृपा कब होगी ?

प्रभु आश्रित—जब गुरु में पूर्ण श्रद्धा, भक्ति, निष्ठा और विश्वास होगा ।

सत्य भूषण—वह भक्ति कैसी हो और वह भक्ति क्या है ?

प्रभु आश्रित–भक्ति में चार चीजें शामिल हैं–

१. अहंकार रहित नम्रता २. स्वार्थ रहित नम्रता ३. सेवा ४. आज्ञा पालन ।

सत्य भूषण–कृपया इन चारों पर तनिक अधिक प्रकाश डालिए ।

प्रभु आश्रित—कोई साधक व्यक्ति विनम्रता से वर्ताव करता है । नमस्कार करता है परन्तु उसे अपनी इस नम्रता, नमस्कार का भी अभिमान न हो । यदि

मन में यह जाने कि मैं वड़ा विनम्र हूं तो अहंकार सहित है, रहित नहीं है। वाल बुद्धि से नमस्कार करने वाला अहंकार रहित नम्रता युक्त है।

२. स्वार्थ रहित नम्रता—किसी अपनी स्वार्थ सिद्धि की खातिर नम्रता न दिखाता हो, नमस्कार न करता हो अपने किसीं सांसारिक पदार्थ उपलब्धी अथवा यश मान, अथवा सांसारिक संकट, आर्थिक दुख की पूर्त्ति के लिए विनम्रता न हो।

३. सेवा किस प्रकार की करें ?—तन से, मन से, धन से, समय से और अपने गुण से, बिना किसी प्रति-कार के। यदि तन सेवा समय अथवा गुण द्वारा समय करने वाला सेवा का बदला चाहता है द्रव्य के रूप में तो वह भक्ति नही है, सेवा नहीं है।

४. आज्ञा पालन का क्या अर्थ है ?—गुरु उपदेश शिक्षार्थ का पालन करे आचरण करे। गुरु आदेश और कोई आज्ञा साधक के लिए हो अथवा गुरु के अपने निमित्त हो, अथवा संसार निमित्त कल्याण के लिए हो, उसे पालन करे बिना ना ना किए अपनी शक्ति को सम्पत्ति को लगा दे।

सत्य भूषण—क्या किसी सावधानी की भी आवश्यकता है ?

अभु आश्रित—सावधानी तो अवश्य करनी चाहिए। सुनो:—

पहली सावधानी—साधक को उतनी जिज्ञासा करनीं चाहिए जितनी कि उसे यथार्थ में आवश्यकता है जिसपर वह पूरा आचरण कर सके। यदि जिज्ञासा करने पर भी आचरण नहीं कर सका तो फिर भी वही उसी एक की जिज्ञासा करता रहे जब तक उसे पूरे आचरण में न ला सके। आचरण हो जाने पर तब दूसरी जिज्ञासा करे। उपदेष्टा शिक्षक को भी उतनी बात सुनानी, सिखानी समझानी चाहिए जितनी वह स्वयं समझ चुका हैं। वही बात समझावे जिस पर वह स्वयं आचरण कर चुका है अधिक नहीं।

फल—साधक अथवा योगी का जब हृदय (१) सात्विक होता है, निर्मल संकल्प विकल्प रहित तब उसके अन्दर शब्द रूप में आदेश, उपदेश होने लगता है और जब।

(२) हृदय चित में समता लाता है तब प्रभु अपने

गुणों का स्पर्श कराते हैं।

(३) जब खोट अन्दर के विकार उपासना से निकल जाते हैं तब उसे प्रत्यक्ष की तरह साक्षात होने लगता है।

(४) जब विनम्र अन्दर बाहर सम है तब शांत मस्तिष्क से विचार तरंगे उत्पन्न होती हैं।

(५) और जब दूसरे के दोषों को उघाड़ता नहीं सहन कर लेता तब उसमें सहन शक्ति आ जाती है और दूसरों का आश्रय बन जाता है।

दूसरी सावधानी—साधक बनना चाहते हो तो साधना की मालिश करो, मार्जन करो। जीवन को पालिश न करो, दम्भी न बनो। बहुत से लोग पालिश से अपना मूल्यमान प्रतिष्ठा गढ़ाने में प्रसन्न होते हैं, परिणाम अपयश होगा। साधन शील मनुष्य को पालिश दिखावे से बचना चाहिए।

तीसरी सावधानी—राज योग में प्रवेश होने के लिये अधिकारी होना पहले आवश्यक है। मंत्र योग की साधना में परिश्रम करने की जरूरत है, वहां सब अधिकारी हैं परन्तु सफलता सब को नहीं होती उसका कारण यह है कि एक व्यक्ति के पास खाने के लिए

पांच पैसे हैं यदि वह धनियों को देखकर कि उत्तम खाना खाना चाहिए और वह हलवा खरीद कर खा लेता है तो वह भूखा रहेगा। पांच पैसे समाप्त कर बैठेगा और फिर पछताएगा, जब रहा ही कुछ नहीं। यदि वह दो पैसे की गाजर लेकर खाए निर्वाह करे तो उदर पूर्ति भी हो जावेगी, शरीर में काम करने की शक्ति भी आ जावेगी और तीन पैसे भी आगे के काम और भोजन के लिए बच जावेंगे। उन तीन पैसों से परिश्रम करके और भी कमा लेगा। मनुष्य को अपनी योग्यता और सामर्थ के अनुसार आत्मिक मार्ग की उन्नति के लिये उचित साधन करना चाहिए, कमजोर निर्बल आत्माओ के लिये स्थूल साधन और बलवान आत्माओं के लिये सूक्ष्म साधन करना उचित और अच्छा है।

फल—गायत्री मंत्र योग की साधना से तीन प्रकार का अन्धकार दूर होता है, बुद्धि गत, हृदय गत, क्रिया गत।

अन्धकार दूर होता है :—

भूः से क्रिया गत अन्धकार।

भुवः से हृदय गत अन्धकार।
स्वः से बुद्धि गत अन्धकार।

जब इनका स्वरूप मालूम हो जावे।

तत्सवि तुर्वरेण्यं से बुद्धि गत अन्धकार।
भर्गो देवस्य धी मही से हृदय गत अन्धकार।
धियो यो नः प्रचोदयात् से क्रिया गत अन्धकार।

जब उल्टी माला फेरी जावे।

सनातन धर्मी लोग जब माला के सुमेरू दाने पर पहुँचते हैं तो कहते हैं सीधी माला न फेरे जाओ पाप लगता है, उल्टाकर जाप करो, उसका वे भाव नहीं समझे। भाव है इसका कि जप करने पर आचरण करो, उल्टी माला द्वारा आचरण होता है।

धियो योनः प्रचोदयात्, भर्गो देवस्य धीमहि, तत्सवितुर्वरेण्यम् ॥

उपासक केवल जप शाब्दिक न करें साथ आचरण करे, पहले अपनी बुद्धि को नेक कार्यों में लगावे, वह कार्य हैं भूः भुवः स्वः। प्राणी मात्र को जीवन दान देना, दुःख हरना, सुख पहुंचाना। फिर ऐसे निष्काम कर्म से उसका अन्तःकरण शुद्ध हो जावेगा तो पाप नाशक

तेज भर्गः को अपने अन्दर धारण करेगा । जब अन्ताःकरण पाप से विमल विशुद्ध हो गया तो तत्सवितुर्वरेण्यं उस सवितः देव मालिक को बरने के योग बन जावेगा अथवा वर लेगा अथवा प्रभु ही उसे स्वयं स्वीकार कर लेंगे ।

सत्य भूषण—गायत्री मंत्र में भर्गो देवस्य धीमही—भर्गः को धारण करना ही गायत्री की साधना है । यह पाप विनाशक तेज कैसा है जो धारण किया जावे ।

प्रभु आश्रित—बस यही एक गुर या मर्म कीं बात है, जिसकी समझ आनी आवश्यक है । प्रभु देव का नाम इस मंत्र में सवितः है अर्थात गुप्त प्रेरक । प्रत्येक मनुष्य प्राणी की बुद्धि में प्रभु देव प्रेरणा देते हैं जब मनुष्य के हृदय में पाप वृत्ति—पाप वासना जगती है । तब भय, लज्जा, शंका के रूप में प्रभु देव प्रेरणा देते हैं । यहाँ तक कि कुत्ता भी जब चोरी से रोटी उठाता है तो भागने की करता है और फिर पुनः पुनः पीछे डर कर देखता है कि कहीं मालिक डंडा न लिये आता है परन्तु जब उसे मनुष्य स्वयं डालता है तो निश्चित होकर खाता है । कव्वा भी जब किसी शिशु के हाथ रोटी

का ग्रास छीन झपट ले जाता है तो वह भी तत्काल भाग कर डर से उड़ता है यदि उसे बुलाकर डाली जावे तो निश्चिन्तता से खाता है। यह अन्तः प्रेरणा पाप को रोकने के लिये प्रभु देव देते हैं। जो मनुष्य मनन शील उसे तत्काल धारण कर लेता है वह पाप से बच जाता है यही प्रथम नमूना पाप विनाशक तेज का धारण करना हैं और यही प्रथम प्रेरणा का समझना है।

मत कोई भ्रम में रहे कि भर्गः का तेज सूर्य चन्द्रमा आदि के समान प्रकाश होगा जिन प्रकाशों को यह आँखें देख सकती हैं या जिनका बुद्धि हमारी रंग रूप का नाम दे सकती है वह भर्गः नहीं है, यह तेज तो सत्य ज्ञान है जो असत्य अनृत को भगा देता है।

अथवा यूँ समझिए कोई भी किसी से प्रेम प्यार करता है, आदर करता है, जैसे व्यक्ति के शरीर का आदर प्यार नहीं अपितु उसके देवता आत्मा से प्यार करता है आत्मा निकल जाए तो शरीर को कोई आदर प्यार नहीं करता। खाट अथवा आसन पर बिठाने वाले शरीर को भूमि पर उतार देते हैं परन्तु उस

आत्मा को प्रगट करने वाला प्राण है। प्राण न रहे तो अस्ति शक्ति और अधिकार सब समाप्त।

ऐसे ही गायत्री मंत्र एक शरीर है, सवितः देव उसकी आत्मा देवता है, शब्द उसकी इन्द्रियां हैं और भर्गः प्राण है, प्राण के धारण करने से ही मंत्र जीवित होगा। प्राण धारण नहीं तो मंत्र मृत है, उपासना भी मृत है, भर्गः को धारण करना, भर्गः का ध्यान करना ही मुख्य बात है। गुरु मंत्र दीक्षा देता है तो यही मर्म की बात समझाता है। भर्गः न केवल असत्य अनृत को भगाता है अपितु दग्ध या भस्म कर देता है। प्रेरणाओं को सुनाना, समझना और उनको धारण करना ही प्रभु ज्ञान है जो तत्काल आचरण कराता है।

सत्य भूषण—प्रभु देव जो मनुष्य की रक्षा करते हैं वह उसका कर्म फल होता है अथवा प्रभु की दया होती है।

प्रभु आश्रित—प्रभु सवितः देव तीन प्रकार से रक्षा करता है, एक न्याय से; दूसरे दया से और तीसरे कृपा से। सवितः देव भूर्भुवः स्वः में कैसे काम करता है, प्राण की रक्षा, दुःख की दूरी, सुख की प्राप्ति—

(१) जब पूर्व कर्म के फल रूप होती है तो वह किसी भूत—के द्वारा।

(२) सात्विक पुण्य कर्मों के बदल में प्रेरणा रूप से

(३) आश्चर्यजनक युक्ति से जिस तक बुद्धि नहीं पहुंच सकती।

अब दृष्टांतों—सच्ची घटनाओं से समझिए :—

(१) प्राण रक्षा में सवित: देव भौत्तिक रूप में रक्षा करते हैं जैसे मुगल सम्राट हुँमायूं शेरशाह सूरी के संग्राम मैं ताब न लाकर अपंनी प्राण रक्षा के लिए नदी मैं कूद पड़ा तो डूबने लगा। नज़ाम सक्का! (माशकी) ने सम्राट को डूबते देखा तो सवित: देव की प्रेरणा से नदी में कूद कर सम्राट को सुरक्षित निकाल लाया। सम्राट ने अपने रक्षक को वरदान में आधे दिन का राज्य करने की आज्ञा दे दी। निज़ाम ने चाम के सिक्के चलाए जिन पर स्वर्ण की टिक लगी होती थी। प्रभु का नाम न लेकर नज़ाम को ही सम्राट ने रक्षक मान लिया।

(२) अभी थोड़े दिनों की बात है कि जापान में एक सख्त साइक्लोन (अत्यन्त वेग युक्त तूफान) चला

जिसकी गति २०० मील प्रति घण्टा बताई गई। समाचार पत्रों में छपा कि साइक्लोन ने आस पास के चार ग्राम बहा दिए और पांचवें ग्राम की एक झोंपड़ी के ऊपर से केवल मात्र हलका स्पर्श करता हुआ गुज़रता रहा और झोंपड़ी को तनिक भी हानि न पहुँचाई। सवितः देव ने एक नव आगन्तक जीव की रक्षा के लिए साइक्लोन से हानि पहुंचने की शक्ति छीन ली। उस झोंपड़ी में एक देवी को प्रसव की पीड़ा लग रही थी। साइक्लोन तबाही मचा रहा था कि देवी ने एक बच्चा दिया जो बच्चा अपनी माता तथा अन्य दो तीन जीवों की जो झोंपड़ी में थे, उन सब की अपने पुण्य कर्मों के कारण रक्षा का साधन बना। साइक्लोन थम जाने के बाद लोग उस शिशु को जिसका नाम साइक्लोन रखा गया, देखने के लिए समूह रूप में जाते और उसे खिलोने, वस्त्र भेंट कर आते। उस बालक का चित्र समाचार पत्रों में छपा था।

(३) एक देवी आभूषणों से लदी रात्रि के १२ बजे के लगभग शेर कोट रोड स्टेशन पर उतरी। उस देवी की गोद में एक नन्हा बच्चा था और उसके पास

आभूषणों तथा मूल्यवान वस्त्रों से भरा हुआ एक ट्रंक भी साथ था। देवी ने शेर कोट के लिए जो स्टेशन से १२ मील दूर था एक तांगा किराए पर किया तांगा चला कुछ दूर चलकर कोचवान की नियत बदल गई, देवी का माल आदि लूटना चाहा। इस भाव से सड़क छोड़ जंगल की ओर तांगा मोड़ा। देवी के पूछने पर कहा कि इधर घोड़े को पानी पिलाकर चलते हैं। वास्तव में यह एक बहाना था। घने जंगल में तांगा ठहराकर देवी को कहा कि जो कुछ तुम्हारे पास है, सब दे दो। देवी ने इनकार किया। कोचवान ने शिशु को जो उसकी गोद में था, सेंटा मारा कि वह इस भय से माल दे देगी। परन्तु देवी बलवती थी, सेंटा छीन लिया। देवी ने बालक को भूमि पर बिठा दिया। कोचवान निहत्था हो गया। वह एक पत्थर उठाने को गया कि देवी को मारूं। पत्थर उठाया तो नीचे से एक सर्प ने उभर कर कोचवान के पाओं में जौलान डाल दिये। कोचवान बन्ध गया, बेवस हो गया। कि अब जरा भी हिलता हूं तो सांप डंक न लगा दे परन्तु सवितः देव प्रभु ने सर्प को केवल मात्र बाँध रखने की आज्ञा दी डंक लगाने को नहीं। अब कोचवान बन्धा

खड़ा है, देवी खड़ी है, बालक भूमि पर पड़ा है, कि इतने में उषा काल हो गया सामने से तहसीलदार साहब का गुजरना हुआ, उसकी दृष्टि पड़ी तो घटना स्थल पर आया। ज्यों ही वह घटना स्थल पर पहुँचा सर्प ने अपना चार्ज तहसीलदार साहब को दे दिया और स्वयं भाग गया। कोचवान को पकड़ लिया गया। यह है प्रेरणा दैविक। प्रभु देव ने कैसे सर्प को कोचवान के वांध रखने की प्रेरणा की और देवी का पुण्य कर्म का फल उसकी प्राण रक्षा का आश्रय बना।

(१) भुवः का स्वरूप—रोगी को डाक्टर के द्वारा औषधि देने से आराम हो गया इस में औषधि और डाक्टर की प्रशंसा होती है, वास्तव में प्रभु ने ही औषधि के अन्दर रोग निवारण का गुण रखा और डाक्र को प्रेरणा की कि अमुक औषधि का उपचार किया जावे। यह है भुवः का आधि भौतिक स्वरूप।

(२) आदि दैविक स्वरूप—एक अन्धा था। चिरकाल तक अन्धा रहा, कुछ नहीं दिखाई देता था। एक दिन सर्प ने अन्धे को डस दिया। सर्प का विष अन्धे को अन्धेपन दूर करने की औषध बन गया, अन्धा ठीक हो गया। नेत्र खुल गए।

इसी प्रकार लंदन में एक अंग्रेज बचपन में अन्धा हो गया, बिलकुल कुछ न दिखाई देता था। चालीस पचास साल अन्धा रहा। एक दिन आकाश मेघाच्छादित हो गया। घटा टोप अन्धकार हो गया। बादल गर्जने लगे। विशेष प्रकार की गर्जना थी। गर्जन में विद्युत भी चमकी तो उस अंगरेज को दिखाई देने लगा, अन्धापन दूर हो गया। बादल की गर्ज उसके अन्धापन दूर करने का कारण बन गई यह है पूर्व कर्म का आधिदैविक फल। इस आश्चर्यजनक घटना पर युक्ति तथा बुद्धि काम नहीं कर सकती।

(३) आध्यात्मिक फल—झंग मघयाना में एक रोगी टाई-फाइड से ग्रस्त हो गया, चिकित्सा होती रही कारगर न हुई। ज्वर १०६ दर्जे तक हो गया। डाक्टर वैद्य सब जवाब दे गए; रोगी के बचने की कोई आशा न रही; घर वाले सब परिवार निराश हो गया। दिसम्बर का महीना था। उसी रात्री में सवितः देव प्रभु ने स्वप्न में रोगी के सिर पर वर्फ का पर्वत रख दिया, रोगी चिल्लाया कि मैं मरा जा रहा हूं, मेरे सिर पर हिम का पर्वत टूट पड़ा है। परम वैद्य सवितः देव रोगी के प्राण बचाने के लिये स्वप्न में ही रोगी

को यह दृश्य दिखा रहे थे, जिसका परिणाम यह निकला कि ज्वर घटता गया। घटते घटते प्रातः तक ज्वर तापमान ९८ दर्जे तक पहुंच गया। डाक्टर वैद्य सब चकित रह गए। यह है आध्यात्मिक फल।

(३) स्वः का स्वरूप :—

(क) एक निर्धन मज़दूरी करते करते धनवान बन गया—यह है आधिभौतिक फल।

(ख) श्रमी को भूमि खोदते खोदते कोष मिल गया।

अथवा एक श्रमी को ५) के बदले में एक लाख रुपया लाट्री में मिल गया—यह है आधिदैविक फल।

एक अनाथ विद्यार्थी भोग से लाचार भूमि पर सो रहा था। जोधपुर का राजा सन्तान रहित मर गया, अब राजवंश कैसे चले। मंत्रियों ने निश्चय किया कि रात ही रात में उस स्वप्नअवस्था में बालक को कार पर ले आओ। कार आई और उस बालक को उठाकर ले गए और प्रातः काल उसका अभिषेक कर राज सिंहासन हर बिठा दिया गया। यह है आध्यात्मिक फल—दया। राजमाता महाराज नेपाल की भग्नि थी उसने उसी दिन गोद में ले लिया।

सत्य भूषरण—श्री महाराज जी ने लिखा है कि गायत्री से दृष्टि ज्योतिर्मय होती है। क्या सब की हो जाती है ?

प्रभु श्राश्रित—गायत्री से दृष्टि ज्योतिर्मय होती है। भीतर से प्रेरणाएं दूर दर्शिता की मिलती हैं परन्तु इसमें बाधक कृतघ्नता। जो जितना कृतघ्न होगा उतना उसकी दृष्टि ज्योतिर्मय कम होगी। उसमें प्रवेश गायत्री का कम होगा। यज्ञ में कृपणता बाधक है। यज्ञ से हृदय विशाल होता है, कृपण को उतना संकुचित होता है।

सत्य भूषण—किसी महापुरुष की धारा (प्रेरणा) कैसे प्राप्त की जाती है अथवा किसी पर अपनी प्रार्थना की धारा कैसे प्रवेश की जाती है ?

प्रभु श्राश्रित—प्राप्त करने वाला—(१) महा पुरुष जब स्वयं अपनी धारा भेजना अथवा देना चाहे ठीक उस समय जव भजन में बैठा हो अथवा

(२) जब इच्छुक अपने सङ्कल्प से विना पूर्व सूचना लेना चाहता हो तो वह महापुरुष जब भजन में

बैठे हों, ऐसा समय जानकर—

उस महापुरुष के आकार को सामने ला, उसके चित्त में चित्त तल्लीन हो जाना चाहिए तब जब धारा प्रवेश होने लगती है तो या तो (क) रोमाञ्च खड़े हो जाते हैं अथवा (ख) शरीर में स्वल्प सा कम्पन हो धक्का देगा। (ग) अथवा अन्तः प्रेरणा शब्द रूप में हो रही होगी (घ) अथवा स्पर्श हो रहा होगा, उस स्पर्श का भी मान हो रहा होगा जिसका चिन्ह यह है कि या तो अश्रूपात अकस्मात होने लग जावेंगे।

(ङ) जब किसी पर धारा डालनी हो तो उसके आकार को सामने ला उसके चित्त में ध्यान कर अपनी धारा उसके चित्त अथवा मस्तिष्क पर डालें तब उस पर प्रभाव पड़ता है।

(च) अथवा रात्रि को जब वह सो रहा हो अपने सच्चे और दृढ़ सङ्कल्प से प्रार्थना करो तो या तो उसे आपका स्वप्न में भान होगा और वही बात जो आप ने मनमें प्रार्थना की है, उन पर प्रगट हो रही होगी अथवा वह प्रातः जब ही जागेंगे सर्व प्रथम तुम्हारा आकार उनके सामने आ जावेगा।

सत्य भूषण—यदि स्वप्न में इष्टदेव अथवा किसी पूर्वज गुरु माता पिता के दर्शन हों तो क्या करना चाहिए ?

प्रभु आश्रित—वही कुछ करना चाहिए जो जाग्रत समय मिलने पर करते हो। यदि तुम्हारी श्रद्धा उनमें सच्ची है तो वैसा अपने आप करने लग जाओगे। जाग्रत में मिलने पर तुम नमस्कार प्यार श्रद्धा से कहते हो उस समय भी ऐसा तुम से होना चाहिए। स्वप्न तो मनुष्य के यथार्थ विचारों को सामने जीवात्मा के लाता है। अब मान लो कि तुमने स्वप्न में दर्शन होने पर नमस्कार नहीं की अथवा की है तो तुमको उसका उत्तर ठीक नहीं मिला, वह कुरूप है, रुष्ट है अथवा आशीर्वाद नहीं दी तो जागते ही उसका कारण सोचो। कोई न कोई दोष उसके प्रति तुम में हो गया अथवा आगया समझो। यदि दोष का ज्ञान नहीं हो सका तो पीछे की पड़ताल करो। कभी तुम ने जाग्रत अवस्था में उनकी अव्हेलना की थी वह अवज्ञात अवचेतन में पड़ा हुआ सामने आ रहा है उसका प्रायश्चित करो, संस्कार शुद्ध हो जावें। उपासक और साधक को इस बात का विशेष ध्यान रखना चाहिए।

सत्य भूषण—व्याकुलता दुःख में जो जप में मन

लग्न से लगता हैं, वह आगे पीछे नहीं लगता—कारण क्या है ?

प्रभु आश्रित—(१) जो लोग बिना उद्देश्य के जप करते हैं अथवा जो अपनी स्वार्थ सिद्धि के लिए करते हैं, उनका कार्य सिद्ध हो गया तब उनमें प्रमाद आ जाता है।

(२) भजन में जब रस आने लगे, अधिक जप हो जावे गोया एक प्रकार का संग्रह भाव हो जावे जैसे धन जमा कर लिया जाता है तो गुप्त उस धन का नशा (अहंकार) पैदा हो जाता है। ऐसे जप धन से उसके तीन चिन्ह हैं जो भजन से वञ्चित रखते हैं :—

(१) प्रमाद—लोकोपकार की भावना से सन्तोष—चलो कर लेंगे, बहुत कर लिया है, लोकोपकार से समय मिलने पर कर लूंगा।

(२) ज्ञान अनुभवों की नवीन नवीन उपज—ज्ञान के रूप में अथवा कविता के रूप में मन का लगा रहना।

परोपकार सेवा—यज्ञोपदेश आदि करने में रुचि बढ़ जानी—फिर संतोष करके दिल में कहना कि यह

भी तो प्रभु का काम है। कई एक का हम से सुधार हो जाता है, यही उलझन है।

(३) जब जब नए नए अन्दर से नई नई उपज ज्ञान अथवा कविता के रूप में धारा बांध कर आने बहने लगती है तो सन्तोष हो जाता है। यही ही तो भजन का धेय्य है, फल है।

यह तीनों अवस्थाएं—तप रज सत् की मनुष्य को भजन से वञ्चित करती हैं। यह संतोष हानि कारक है।

एकाग्रता से जब पवित्रता आती है तो मनुष्य साधक में स्मृति बढ़ती और विनम्रता आती है। जब एकाग्रता से कोई अनुभूति, ज्ञान अथवा कविता का रूप उपजना है तो अहंकार गुप्त पैदा हो जाता है, जो प्रमाद और विस्मृति पैदा कर देता है, यह अवस्था भयानक होती है, अपयश कराती है। आवश्यक बातों में मर्यादा के पालन कराने में प्रमाद अथवा विस्मृति होने केकारण चूक हो जाया करती है। प्रभु की देन दात समझ कर आचरण करने से अहंकार नहीं रहता।

———

नवम प्रकाश

ओंकार ब्रह्म का सरल ज्ञान

अब साधक पहले उस ओंकार ब्रह्म को कैसे समझे ?

एक बालक घर में रहने वाला जब चाहता है कि मैं अकेला हूं, घर पर पड़ा हूँ, खेलूं । यह खेलने की फुरना या इच्छा हुई तो वह घर से बाहर निकल पड़ा । कहां जायगा ? मैदान में जहाँ बालक खेलते हैं। वहां शामिल होकर बाह्य बुद्धि से जाँच करता है कि कौन सा खेल है, किस किस चीज़ से खेल रहे हैं तो बच्चे को घर में बैठने वाली बुद्धि में विकास हुआ वह खिलाड़ियों की बुद्धि बनी ।

ऐसे ही साधारण बुद्धि से जब मनुष्य प्रभु की खोज में निकला तो उसकी साधक बुद्धि बन गई, गुरु के पास समझने के लिए गया । गुरु ने एक घड़ा दिखाया, पूछा कि क्या है ? बोला घड़ा है ।

गुरु—किसने बनाया, कैसे बनाया ?

शिष्य—यह पता नहीं ।

गुरु ने एक कागज लिया पूछा यह कैसा है—

शिष्य—कोरा है।

अब गुरु ने एक पैनसिल से उस कागज़ पर एक चित्र बना दिया और पूछा कि क्या है।

शिष्य—यह चित्र है।

गुरु—कैसे बन गया !

शिष्य—आपने ही बनाया है।

तो गुरु ने शिष्य को समझाया कि यह घड़ा कैसे बन गया होगा। बोला किसी ने जरूर बनाया होगा। अब शिष्य को कुम्हार के पास ले गया जहाँ कुम्हार घड़े बना रहा था। जब उसके मैदान में ले गया तो देखा प्याले, प्यालियां, घड़े, सुराहियां, लोटे, दीपक और नाना प्रकार की वस्तुएें सूख रही हैं। पूछा यह सब किसने बनाईं ? तो शिष्य बोला यही प्रतीत होता है किसी कुम्हार ने यह सब प्रकार से बनाई हैं।

फिर गुरु शिष्य को ले गया यह समझाने के लिये कि यह कहां से बनाईं। शिष्य को जाकर मिट्टि का गारा दिखाया तो कहा देखो ! इन सब वस्तुओं का

एक ही उपादान कारण मिट्टि है। साधक जिज्ञासु था, बुद्धि उसकी धारण करने वाली थी उसमें अब ब्रह्म के जांचने की श्रद्धा इच्छा तीव्र हो गई। गुरु ने कहा नमूना समक्ष हो, बनाने वाला कुम्हार है, बनाया मिट्टि से, बनाया गीनागों। यह कुम्हार एक देसी है, सीमित काम कर सकता है।

वह ब्रह्म व्यापक है, समस्त ब्रह्माण्ड उसका घर है, अब जैसे खड़े से घड़े बनाने वाले का ज्ञान हुआ है, वैसे ब्रह्माण्ड में निकल जाओ घूमो और उस ब्रह्माण्ड के बनाने वाले का ज्ञान प्राप्त करो।

अब शिष्य साधक जिज्ञासु एक वाटिका में चला गया। जिज्ञासु बुद्धि थी। वृक्षों पौधों को देखा। कहीं आम, कहीं अनार, कहीं जामुन, कहीं संतरे, कहीं नीबू। पहले तो वृक्षों को देखा। नाम तो सब का वृक्ष है परन्तु आकार रंग रूप सब का पृथक पृथक है। पत्ते सब के हैं, सब हरे हैं परन्तु उनका हरापन एक दूसरे से भिन्न भिन्न है। माली को बुलाया, पूछा—यह वाटिका किस ने लगाई? माली बोला—मैंने लगाई। फिर पूछा तुमने लगाई तो सब पेड़ों के पत्ते, सब के मूल, सब की शाखाएं एक जैसी क्यों नहीं?

माली ने कहा, मुझे क्या पता ? मैंने तो बीज बोया है, जल सींचा है, यह तो प्रभु जानें क्यों एक जैसे नहीं बनाए ? माली ने पूछा, तुम कितने भाई हो ? कहा, हम चार भाई हैं। पूछा, तुस सबका रूप रंग एक जैसा है ? बोला, नहीं फिर पूछा तुम चारों का माता पिता एक है तो तुम एक जैसे क्यों नहीं पैदा हुये ? अब पिता के पास गया और पूछा तो उसने उत्तर दिया कि वह सब रचना उस स्वामी की है, वही जानता है। आश्चर्य में पड़ गया। पुनः बाटिका में आया माली से बोला आम कैसा है ?

माली—मीठा है ?

जिज्ञासु—नींबू कैसा है ?

माली—खट्टा है।

जिज्ञासु—यह क्यों ?

माली—प्रभु जाने !

फिर एक आम की गुठली पड़ी थी, उसे तोड़कर खाया तो वह फीकी थी। नीबू का दाना चखा तो वह कड़वा था। माली से पूछा, यह क्या बात है ? जो बीज फीका है उसका फल मीठा, और जो कड़वा है उसका खट्टा बना दिया। माली बोला, यही तो आश्चर्य

है। यह प्रभु जाने ! मैं तो बीज बना नहीं सकता, बीज उगा नहीं सकता, मैं मीठा खट्टा कर नही सकता, मैं तो केवल बीज बोता हूं आगे उगाना, बढ़ाना, पकाना, रस भरना, रंग देना यह सब प्रभु के काम हैं। साधक जिज्ञासु बालक चला गया और ऐसे नाना प्रकार के स्थूल पदार्थों को सामने ला लाकर सोच विचार में पड़ने लगा। उसकी बुद्धि इधर एकाग्र होती गई।

एक दिन बाटिका में गया; एक अनार को लिया; उसे तोड़ा तो चकित हो गया, आहा! यह मोती ज्वलन्त मोती कैसे गुत्थे और सुन्दर लग रहे हैं; इसके ऊपर जो छिलका सख़्त है ऊपर गांठ लगी हुई है, यह दाने अन्दर किसने जोड़े? एक दाना निकाला, बहुत प्यारा लगा; सोचा, क्यों इसे जुदा किया, उसे फिर उसी स्थान पर जमाने लगा वह जमा ही नहीं, आश्चर्य में आ गया। यह क्या जादू है? दाने को चुटकी में लिया, चुटकी का जोर पड़ा तो जल फब्बारे की तरह उससे उछल पड़ा और हैरान हो गया। उस एक अनार के अन्दर बाहर की रचना, नरम नरम परदों से ढका हुआ। ऊपर की छाल को चखा। थू थू

की । अन्दर की नरम नरम झिल्ली को चखा तो कटु लगी । दाने को चखा तो बहुत मीठा, स्वादिष्ट । दाने की गुठली बड़ी सख्त एक एक बात को सोचते सोचते दिन बीत गया, न भूख लगी न प्यास, न घर का न माता पिता का ख्याल रहा । सायं हो गई ।

माली ने कहा, बच्चे ! अब अन्धेरा पड़ रहा है । जाओ घर वाले ढूंढ रहे होंगे । आंख ऊपर उठाई तो कहने लगा । आहा ! सायं हो गई । मुझे तो दिन का पता ही न लगा । घर गया । माता पिता बड़े व्याकुल थे । पूछा कहां रहे ? बोला, पिता जी ! पता नहीं लगा, कहां रहा । एक ही अनार में दिन बीत गया, न भूख का पता रहा न धूप का, न छाऊँ का । पिता बोला, क्या तू समाधि में चला गया था ? क्या तेरी समाधि हो गई थी ?

बच्चा—समाधि क्या होती है ?

पिता—जिस गुरु ने तुम्हें बाटिका में भेजा, उससे पूछो, समाधि क्या होती है । बच्चा चलने लगा । पिता बोला, पुत्र ! अब रात्रि है । गुरु को क्यों इस समय तंग करते हो । तुम बच्चे हो, तुम जाओगे तो वह रुष्ट

होगा । अब भोजन करो, दिन भर नहीं किया । बच्चा बोला, मुझे भूख ही नहीं रही । मैं जाऊंगा अभी जाऊंगा । पिता ने बलात्कार बिठा दिया, न जाने दिया ।

बच्चे ने खाना तो खाया परन्तु मन उसका गुरू के पास जाने में रहा । विवश होकर सो गया तो निद्रा न आती । कई प्रकार के विचार दौड़ाता रहा, अन्ततः निद्रा हो गई । परन्तु स्वप्न आया कि उसी बाटिका में फिर रहा हूं और सब वृक्षों पौधों को देख रहा है । कहीं पौधे उखाड़ उखाड़ कर देखता है कि यह कैसे उगते बढ़ते हैं । एक संतरे के पेड़ के नीचे जा खड़ा हुआ । संतरा गिर पड़ा । उठाया । उसके छिलके में सुगन्ध थी । छिलका पीला था, छीला तो फालियां गुलाबी निकलीं । ऊपर तागों से बन्धी हुई डली थी । डली का परदा उफेद, गुदा गुलावी था । एक एक फाड़ी में तीन में तीन तीन बीज थे । बीज सफेद थे । संतरे की फाड़ियां गिनीं तो १२ थीं । सब में बीज, किसी में तीन, किसी में दो । सब बीज गिने तो लगभग ३० निकले । ऐसे पेड़ पर सैकड़ों संतरे लगे हुये थे । पेड़ के पत्ते हरे थे, तना (मूला) डण्डी खाकी थी ।

आश्चर्य में पड़ गया। बीज खाओ तो कड़वा था। संतरा की फली मीठी थी। सोचने लगा, नन्हा सा बीज, सफेद और कटु। बन गया क्या का क्या ? कहने लगा, कौन होगा इसे बनाने वाला और फलियों को नियन्त्रण में जोड़ने और वश में रखने वाला, तागों से छिलके के अन्दर कैसे पैदा हो गया सब कुछ। मैंने तोड़ा, छीला कि अब इसे वैसा जोड़ नहीं सकता और मनुष्य का बनाया होता तो तोड़ कर फिर बना देता। इसका रचियता कोई और है। उसी आश्चर्य में ध्वनि आई, कि जो तुम्हारी समझ में नहीं आता, वही ब्रह्म है वही ओम्, ओंकार है। जाग हो गई। देखा तो कुछ भी नहीं। वस्तु तो है नहीं, बाटिका भी नहीं है परन्तु ज्ञान मुझे अभी है। जो जो देखा, खाया, चखा, स्वाद भी मालूम है। जी सूंघा था वह गन्ध भी याद है। जब वस्तु नहीं परन्तु सब देखना, सुनना, चखना, खोलना, छीलना उठाना सब याद हैं। कोई वस्तु उपस्थित नहीं फिर भी मुझे उनके रूप, रस, गन्ध का निश्चय हैं। उसे प्रसन्नता तो हुई परन्तु जिज्ञासा और तीव्र हो गई।

प्रातः उठा और पिता से कहा, मैं गुरु जी के

पास

जाता हूँ। पिता ने कहा, गुरू महाराज अभी निवृत्त न हुए होंगे। देर से चलेंगे, मैं साथ चलूंगा। बच्चा न माना, रो पड़ा। कहा, मुझे रात भर निद्रा नहीं आई, मैं वहाँ जाकर बाहर बैठ जाऊंगा। पिता विवश होकर साथ हो लिया और गुरु महाराज के पास पहुंच गए। गुरु द्वार खुला और नमस्कार करके बैठ गए।

गुरु बालक को देखकर हंस पड़ा।

पिता ! महाराज क्यों हंसे ?

गुरु—तुम्हारे बालक को देखकर।

पिता—बालक ने कौनसी चेष्टा की।

गुरु—उसका मुख मण्डल बोल रहा है।

पिता—मुझे तो कुछ प्रतीत नहीं हो रहा।

गुरु—बालक की वाम आँख बतला रही है कि यह बालक सँस्कारी है, साधारण बालक नहीं, यह योगी बनेगा।

पिता—मुझे भी तो कुछ बताइए, बालक को हाथ से न खो बैठें।

गुरु—इस बालक की आंख योगियों की है ऐसी

जैसे समाधि लगाकर उठा हो ।

पिता—कल सारा दिन यह घर से निकला रहा। हम ढूंढते रहे । इसकी माता व्याकुल रही । सायं को आया तो मैंने कहा, तुम कहां रहे ? कहा एक अनार में रहा । दिन का पता नहीं लगा । मैंने कहा, क्या समाधि लग गई थी ? मुझ से बालक ने प्रश्न किया समाधि क्या होती है ? रात्रि को महाराज के पास आने को तय्यार था, मैंने नहीं आने दिया । अब प्रातः घसीट लाया है । रोता रहा । आने को व्याकुल रहा ।

गुरु—अच्छा बच्चा ! तुम अब सुनाओ ।

बच्चे ने कुम्हार की चीजों के बाद का वृतांत सब का सब सुनाया । गुरु बालक के मुख की तरफ बराबर आंख कान लगाए ताकता रहा । कैसे बोलता है । देखी, चखी चीज़ के बयान करने में उसकी गति विधि कैसी रहती है किस शैली से बयान करता है। स्वप्न की बात भी हुई ।

गुरु ने गद गद होकर बालक के सिर पर हाथ फेरा, आशीर्वाद दी और कहा, वत्स ! यही समाधि होती है ।

पिता—गुरू जी ! समाधि कोई खाला जी का घर है, इस बालक को समाधि प्राप्त हो गई। हमारे नगर में बड़े बड़े विद्वान हैं धनवान हैं, धर्मात्मा हैं परोंपकारी हैं, वह तो योग के समीप नहीं जाते। समाधि तो योगी लगाते हैं, यह तो अभी बालक है।

गुरु—योग समाधि का सब कोई अधिकारी नहीं होता। उसका पूर्व जन्म जन्मान्तर के संस्कारों का सम्बन्ध होता है। ऋषि दयानन्द पिता, पितामह क्या विद्वान नही थे। स्वामी रामतीर्थ, स्वामी विवेकानन्द जैसे क्या और लिखे पढ़े एम० ए०, बी० ए० न थे ? महात्मा बुध राजकुमार थे, गोपीचन्द भी नवयुवक राजकुमार था। गुरु नानक देव, कबीर सन्त जन्म से ही इस मार्ग में सिद्ध हो गए। अब मुझे बालक से बात करने दो।

बालक—महाराज समाधि मैं जानता तो नहीं पर समाधि शब्द सुन कर मेरे मन में बड़ा उल्लास पैदा हो रहा है। समाधि क्या होती है ?

गुरु—पहले तेरे पिता को मैं सन्तुष्ट कर दूं, सुनो सेठ ! योग दर्शन में समाधि पाद में अधिकारी

कौन हैं, लिखा है :—

सूत्र २१— तीव्रसंवेगानामासन्नः

जिन पुरुषों का साधन (अभ्यास और वैराग्य) तेजी से चलता है, जो सब प्रकार की विघ्न वाधाओं को ठुकरा कर अपने साधन में तत्परता से लगे रहते हैं उनका योग शीघ्र सिद्ध हो जाता है, भले ऐसे पुरुष साधक मन्द गति के हों अथवा मध्यम गति के अथवा अतितीव्र उत्तम गति के हों, अपनी योग्यता और गति के अनुसार उनको योग सिद्धि प्राप्त होती है। इन मन्द, मध्यम, उत्तम साधकों में भी इसी प्रकार फिर तीन तीन प्रकार के होते हैं परन्तु वह बनते सब योगी हैं, देर सवेर वाली बात होती है। इसलिए २२ सूत्र में महाराज पातञ्जलो ने कहा :—

मृदु मध्याधिमात्र त्वात्त तोऽपि विशेष : ॥

साधक की मात्रा (१) हलकी, (२) मध्यम (३) उत्तम (मृदु उपाय वाला, मध्यम उपाय वाला, उत्तम अधिमात्र उपाय वाला)

पिता—भगवन् ! मेरी समझ में कुछ नहीं आया।

गुरु—जिन साधकों में श्रद्धा, विवेक, शक्ति और

भाव साधारण हैं उनका साधन मृदु मात्र वाला है। और जिन में श्रद्धा, विवेक बुद्धि और भाव कुछ उन्नत है उसका साधन मध्यम मात्रा वाला और जिन साधकों में श्रद्धा, विवेक और भाव अत्यन्त उन्नत हैं उनका साधन अधिमात्रा वाला गिना जाता है।

पिता—मात्रा शब्द की समझ नहीं आई।

गुरु—अभ्यास और वैराग्य का जो क्रियात्मिक बाह्य स्वरूप है उसे संवेग नाम से कहा गया हैं और जो उनका भावात्मक आभ्यान्तर स्वरूप है वह उनकी मात्रा अथवा दरजा है। साधन में क्रिया की अपेक्षा भाव का अधिक महत्व है।

व्यवहार में भी देखा जाता है कि एक ही कार्य के लिये समान रूप से परिश्रम किए जाने पर भी जो उस की सिद्धि में अधिक विश्वास रखता है, जिस मनुष्य को उस कार्य के करने की युक्ति का अधिक ज्ञान है अथवा जो उसे प्रेम और उत्साह पूर्वक विना उत्काए (निरन्तर) करता रहता है, वह अन्यों की अपेक्षा उसे शीघ्र पूरा कर लेता है। यही बात समाधि की सिद्धि में भी समझ लेनी चाहिए।

पिता—अब समझ आ गई ।

[दो प्रकार की समाधि]

गुरु—(बालक से) वत्स ! समाधि शब्द मात्र के सुनने से जो तुम्हारे हृदय में उल्लास जाग्रत हो रहा है वह पूर्व संस्कारों की जाग्रति का द्योतक है । यद्यपि तुम बालक हो परन्तु जैसा तुमने अपना वृतांत शान्त मग्न रहने का सुनाया है, इससे तुम्हें दो प्रकार की समाधि का दर्शन हो गया है । बालक का मुख मण्डल इन शब्दों के सुनते ही ज्योतित हो उठा, एक विचित्र आभासी मुख मण्डल से निकलने लगी जो गुरु को अपने ऊपर दयालु बनाकर आकर्षण कर रही थी । गुरु बोला—दो प्रकार की समाधि होती है । एक एकाग्रता से पैदा होती है उसे सम्प्रज्ञात समाधि कहते हैं । जिससे तत्वों का विज्ञान होता है उससे प्रभु देव में श्रद्धा और निष्ठा बढती है ।

दूसरी निरुद्ध अवस्था से समाधि होती है उसे असम्प्रज्ञात समाधि कहते हैं, उसमें आत्म परमात्म दर्शन होते हैं । तुम्हारी समाधि एकाग्रता की समाधि है।

सम्प्रज्ञात समाधि के दरजे

इस सम्प्रज्ञात समाधि के भी दरजे हैं, [१] वितर्कानुगत; [१] विचारानुगत, [३] आनन्दानुगत, [४] अस्मितानुगत। अब तुम्हें वितर्कानुगत समाधि की प्राप्ति हुई है जिसका नाम जाग्रत स्थानी है। वस्तु में ओहा पोह रहने से एक ही विषय में तुम निमग्न रहे। भिन्न भिन्न वस्तुओं को भिन्न भिन्न रूपों से विचारा। उसमें तुम्हारा लक्ष्य यही रहा कि इन वस्तुओं को किसी ने बनाया है और वह उन्हें अपने वश में रखता है, नियम से चलाता है, वह कोई अपनी विलक्षण शक्ति वाला है, उसकी बुद्धि भी विलक्षण है; वह जीता जागता है परन्तु मनुष्यों की तरह नहीं। उनसे कोई विशेष महान शक्ति है।

प्रभु को जानने के चार पाद

यह प्रभु के जानने या समझने का पहला प्रकार है या पहला पाद है अथवा पहली मात्रा है जिसे ब्रह्म ज्ञान के भण्डार माण्डूक्योपनिषद ने जाग्रतस्थानो बहिप्रज्ञः सप्ताङ्ग ऐकोनविंशति मुखः स्थूल भुग्वैश्वानरः पृथम पादः ॥ मन्त्र ३ ॥

दूसरा पाद

दूसरी समाधि विचारानुगत—जो तुमने स्वप्न में देखा और विचारा। किस शक्ति से अन्दर प्रकाश हुआ। बिना स्थूल यन्त्र आदि के सब कार्य हुआ, देखा और तुम्हें आवाज से निश्चय हो गया कि ब्रह्माण्ड का रचियता जिस की समझ नहीं आती सोचने पर, बह ब्रह्म ओंकार नामी है।

स्वप्न स्थानोऽन्तः प्रज्ञः सप्ताङ्ग एकोनविंशति मुखः प्रविविक्त भुक् तैजसो द्वितीयः पाद ॥

अब गुरु, पिता और पुत्र दोनों को एक कारखाने में ले गया, जो शीशे की फैक्ट्री थी। सर्वप्रथम द्वार के भीतर से गुजरे तो माल पैक हो रहा था, वह थे लैम्प। गुरु ने कहा, पुत्र ! देखो, यह क्या है ? कहा लैम्प–हरिकेन (दस्ती लैम्प)। गुरु इसमें क्या क्या है ?

बालक को तो नाम न आते थे। पिता बोला—इसमें ऊपर पकड़ने के लिए कड़ा है, गुरु ने इसे पृथक कर दिया। नीचे का भाग जिसमें तेल डाला जाता है टंकी हैं, ऊपर एक सिर टोपी समान और तीसरा

इनको टंकी और टोपी से मिलाने वाला वायुगमनागमन भाग, सिर और पाऊँ को दोनों ओर से जोड़ने वाला बाजू, टंकी का ढकना, चिमनी को सुरक्षित रखने के लिए फ्रेम (Frame), बत्ती को ऊपर नीचे करने के लिये एक चाबी, और एक चिमनी को ऊपर नीचे करने के लिये एक हैंडल। एक बत्तीदान ढिबरी और इस ढांचे में एक चिमनी शीशे की है।

अब देखो इस शिल्पालय में एक एक वस्तु के लिए पृथक पृथक यन्त्र और व्यक्ति कार्य कर रहे हैं और फिर एक एक स्थान से सबको उठा उठाकर एक कार्यालय (Work shop) में लाते हैं जहां इस ढ़ाँचे को Adjust (संयुक्त कर रहे हैं। कितने व्यक्ति हर स्थान पर कार्य करते हें और फिर शीशे के शिल्पालय मैं शीशा पिघलता है रेती और चूना इसका मसाला है। भट्टी में डाला जाता है और वह पिघल कर (द्रव्य बनकर) सांचे में डाला जाता है तब यह चिमनी बनती है और टीन के समस्त अंगों को युक्त करने के बाद चिमनी शीशे वाली लगाई जाती है और बत्तियां अन्य शिल्पालय में बनती हैं। तेल भूमि से निकलता है, कम्पनियों से खरीदा जाता है और टंकी में डाला

जाता है। दीपशिलाका का पृथक शिल्पालय हैं जहाँ दीपशिलाका खरीद करके उसे रगड़ कर बत्ती को जगाया जाता है तब एक लैम्प बनता है। इधर तुम अपने शरीर को देखो, भुजा पकड़ करके इसमें क्या क्या है ? कन्धा, डौला, कोहनी, हाथ की हथेली, अंगुलियां, पोरे और चाम। बीच में अस्थि माँस, रक्त देखो कैसे संयुक्त हुए हुए हैं। किसने संयुक्त किया। कारखाना एक, एक ही स्थान, एक ही मसाला। अब तुम देखो इस कारखाना में एक तो कारीगर बनाने वाले, अलग अलग पुरज़ों को बनाने वाले परन्तु मसाला (उपादान कारण) उन्होंने नहीं बनाया, न टीन, न रेत, न चूना, न अग्नि लकड़ी, कोयला—यह सब प्रभु कृपा से बाहर से आए, कारीगर बना रहे हैं। दूसरा संयोजक (Fitter) जो संयुक्त कर रहे हैं। तीसरा ठीक इसी संयुक्त किये कार्य को चलाने वाला चालक, चौथा उस चल शक्ति सम्पन्न यन्त्र का रक्षक स्वामी। सो इस विश्व ब्रह्माण्ड यन्त्र का कारीगर फिट्टर चालक और स्वामी, वह इकला परमात्मा अपनी कर्तृत्व, व्यापकत्व, नियन्त्रित्व और स्वामित्व शक्ति है, वही ब्रह्म ओंकार है।

पिता—महाराज ! कभी कभी तो मुझे भी सन्ध्या करते ऐसी अवस्था हो जाती है कि न तो शब्द उच्चरते हैं न अर्थ का ध्यान होता है। करते करते ही सब कुछ भूल जाता हूं। एक आनन्द की तरङ्ग दौड़ती है। सारा शरीर वे सुध हो जाता है। बिना आनन्द के अपना भी कुछ पता नहीं लगता और जब वह अवस्था टूटती है तब सारा शरीर हलका होता है और सोचने पर भी पता नहीं लगता कि कहां रहा, कहां चला गया था परन्तु होती हैं यह कभी कभी और अकस्मात प्रभु कृपा से है अपने फिक्र चिन्ता बल से नहीं।

गुरु—बस यही आनन्दानुगत समाधि का रूप है, इस समय साधक न तो अन्नमय कोष जिसे कारण प्रकृति कहते हैं, सुषप्ति काल में भी यहां आनन्दमय कोष में प्रवेश होता है। अन्दर की वासनाएं अनन्त होते हुऐ भी सब सो जाती हैं। बाहर के विषय भी बाहर रह जाते हैं, सम्बन्ध टूट जाता है। अन्दर बाहर का सम्बन्ध तार टूट जाती है इसलिए कोई भय शोक भ्रम मोह नहीं रहता। सुषप्ति काल में एक भूत एक मुख होता है सुषप्ति में उससे जागने के बाद भान करता है कि आज बड़े सुख से सोया परन्तु आनन्दा-

नुगत समाधि में सारी समाधि काल तक आनन्द अनुभव करता रहता है। यह है तीसरी अवस्था उस ओम् ब्रह्म की जब वह निर्विचार प्रकृति की साम्य अवस्था होती है। समस्त संसार उसी अपने कारण प्रकृति में लीन हो ज़ाता है। सुषप्ति, प्रतिदिन होती है और यह समाधि आनन्दानुगत अभ्यास से लानी पड़ती है।

फिर वास्तविक अवस्था तो चौथी है जो अकथनीय है। वह आत्मा का परमात्मा में प्रवेश होकर आत्मा ही जान और अनुभव कर सकती है, वह वह योगी जाने जिनकी असम्प्रज्ञात समाधि होती है।

कारखाना दिखाकर गुरु, पिता पुत्र वापस चले गए। बालक को और भी लग्न तीव्र हो गई। उसी बाटिका में गया। इधर देखते उधर देखते अपने शरीर का विचार करने लगा कि जैसे बीज श्वेत से संतरे डण्डी, पत्ते, फल, छिलका, फाडियां भिन्न भिन्न प्रकार के बन गए। इसी प्रकार मनुष्य जब अन्न खाता है तो उस अन्न से अन्दर क्या क्या जा बनता है। जब देखा खाया अन्न और बना रुधिर, मांस, अस्थि, मज्जा, मेघ, बाल खाल सब के

रंग, गुण और अवस्थाएं जुदा जुदा बन गईं। अन्दर कौन ऐसा कर रहा है। दीवार के साथ बैठा था और सोचते सोचते बेसुध हो गया जब आंख खुली तो धूप सख्त थी, दीवार को हाथ लगाया वह बहुत गरम हो गई थी, अपने वस्त्रों को हाथ लगाया गरम पाए, एक पत्थर पड़ा था उसे हाथ लगाया वह भी बहुत गरम था, पानी लोटे में रखा गरम पाया, अब वृक्षों को हाथ लगाया, पत्तों को लगाया, अनेक पेड़ों को लगाया कोई गरम न था। आश्चर्य में पड़ गया, सोचने से बुद्धि आगे न पहुंच सकी, माली से पूछा ये पेड़ और पत्ते क्यों गरम नहीं, और सब चीजे गरम हो गई हैं। माली ने कहा मुझे तो पता नहीं प्रभु जाने ! अब घर नहीं गया कि पिता रोक लेगा, गुरू के पास गया। गुरु ने पूछा कैसे आए तो सब वृतांत सुनाया।

गुरु ने कहा कि वृक्ष की जड़ें शोहे तक पहुँची हुई हैं, वहाँ स्रोत से जल चढता है और ऊपर तक पहुंचता है, यह सदा स्रोत से सम्बन्धित रहती हैं, इसलिये सूर्य की गरमी इनको गरम नहीं करती, हर समय जल पहुँचता रहता है जैसे तुम्हारे सिर को भिगो दिया जावे और वस्त्र की टाकी भिगोकर सिर पर रख ली जावे तो

सूर्य की गरमी तुम्हारे सिर को न लगेगी जो अपने स्रोत के साथ सम्बन्धित रहता है और उस से जुदा नहीं होता, उसे न सरदी में सरदी और गरमी में गरमी लगती है ऐसे जो भक्त प्रभु के साथ सदा युक्त रहते हैं, उनको न पाप असर करता है न ताप। बालक सुनते ही उछल पड़ा, बोला—अच्छा। अब तो मैं भी प्रभु ओ३म् के साथ सदा सदा जुड़ा रहूँगा। दौड़ पड़ा। गुरु से नमस्ते भी न की, गुरु समझा, इसका अनुराग तीव्र हो गया, यह तो घर बार को छोड़ देगा, बच्चा है, माता पिता को दुःखी बनाएगा। वह भी उसके पीछे पीछे चले। बालक घर पर नहीं गया उसी बाग में सीधा चला गया और बैठ गया एक पीपल के नीचे। आंखे बन्द करलीं। सोचने लगा, यह नीचे से पानी ऊपर कैसे चढ़ता होगा। कोई पेड़ों में नल कुआ तो नहीं लगा है, इस विचार में था कि एक पत्ता ऊपर से गिरा और उसके मुख पर आ लगा। आँख खुल गई और देखा तो 'पत्ता' है परन्तु उसका हरा रंग उड़ा हुआ है, पिंजर सा है। बारीक तन्तु हैं और अनगिनत हैं। कहने लगा, वाहरे ओम्। अब पता लगा कि वृक्ष के इतने ऊपर के पत्तों में तू कैसे पानी

पहुंचाता है। शायद इन्ही तन्तुओं के द्वारा पानी हरा भरा रखता है, तो इस वृक्ष के तना के अन्दर में इसी तरह की असंख्य नाड़ियां होंगी जैसे हमारे शरीर में नाडियां हैं। इतने में गुरु आ पहुँचे। बालक उठा, नमस्कार की और कहा—गुरु देव! मैं सोच रहा था पानी नीचे—से ऊपर कैसे चढ़ता होगा। कोई नलकियाँ तो लगी नहीं हैं, मैं विचार कर रहा था कि यह पत्ता ऊपर से गिरा, मेरे मुख पर आ पड़ा, मेरी आंख खुल गई तो देख रहा हूँ कि ये नाड़ियां पत्ते की हैं, इन्हीं के द्वारा पानी पत्ते को हरा भरा रखता होगा और ऐसे वृक्ष के तने के अन्दर भी होंगीं।

गुरु बोला—शाबाश, तेरे मार्ग का पथ प्रदर्शन करने वाला भी वह आप प्रभु ओम् ही है। अच्छा तो ऐसा कर, अब विद्या पढ़ ले तब तेरा योग मार्ग बहुत जलदी तेरी समझ में आ जावेगा, नहीं तो कहीं भरमा जावेगा।

गुरु शिष्य जब उठे तो एक भारी पत्थर को माली कई मनुष्य लगा नीचे से डांगें डाल उलटा रहे रहे थे। जब वहां देखा और पत्थर उलटा तो अनगिनत कीड़े मकोड़े नीचे थे। बालक हैरान रह गया।

गुरु जी यह असँख्यात जीव नीचे पड़े कैसे जीते हैं ? देखा तो सबके मुख में कुछ न कुछ है । तो कहने लगा वही मेरा ओम् इन छिपे हुओं को खाने को देता है। गुरु जी । मैं अब यहाँ ही बैठता हूं, मुझे भी तो मेरा ओम् अपने आप रोटी देगा। गुरु शिष्य को उसके इतने भारी विश्वास को देख चिन्तित हो गया कि यह बालक घर से कहीं निकल न जाए। तो समझाकर शिष्य को साथ ले उसे घर पहुँचाया। उसका पिता दुकान पर गया हुआ था, स्वयं अकेले दुकान के रास्ते जाकर उसके पिता को समझाया। प्यारे ! यह बालक तीव्र बुद्धि है वैज्ञानिक बुद्धि वाला है, तू इसे विद्या की तरफ लगा, धर्मात्माओं का संग इसे सदा मिलता रहे, बालक है, किसी कुमार्गी अथवा मिथ्या वादियों के संग न लग जावे, नहीं तो यह सारा दिन घर से निकला रहेगा और इसे वैराग है किसी चीज संसारी पर इसका मोह नहीं रहेगा जब आप माता पिता भाइयों से भी यह दूर भाग जाता है, इसके मस्तिष्क को दबाना नहीं इसके विकास को रोकना नहीं, केवल विद्या में प्रवृत कराओ और धर्मात्माओं का संग कराओ। यही तुम करो फिर तुम्हारा बालक यहाँ

रहकर भी उन्नति करेगा। नहीं तो पछताओगे।

प्रभु की क्या विचित्र लीला है 'सैंईसिमरिन जिन आप सिमरावें' उनके लिये मार्ग अपने खुलता और मिलता जाता है। भूमि में पड़ा बीज अपने सजातीय परमाणुओं को स्वयं खींच लेता है। परमाणु दौड़े दौड़े उसकी ओर ही चले आते हैं और उसी में प्रवेश करने लग जाते हैं। भूमि ने बीज स्वीकार किया नहीं कि सब देवता अपनी अपनी भेंट चढ़ाने लग जाते हैं।

बालक भोजन कर रहा था कि द्वार के बाहिर एक याचक ब्राह्मण 'तारा' लिये गा रहा है।

धन्य धन्य तेरी कारीगरी करतार ॥
जब निराकार और निर्विकार।
साकार बना दिया जग कैसे ?
जागृत, स्वप्न सुषुप्ति तुर्या।
फिर रचा मुक्ति का मार्ग कैसे ?
क्या वस्तु लई जिससे देह भई।
फिर बना दई रंग रंग कैसे ?
सब को धार रहा, रम रहा सब में।

फिर सबसे रहा अलग कैसे ?
जब अपाणि पादो जवनो गृहीता ।
फिर पकड़े पग कोई कैसे ?
जब काशी काबे में पता नहीं ।
फिर पता लगे यहां कैसे ?
बन पृथ्वी सूरिज, नभ तारे ।
किस विध रहा तो धार ॥
धन्य धन्य तेरी कारीगरी करतार ॥
किये सूरिज से चमकीले पदार्थ,
चमक निराली कहीं नहीं ।
बरसे तो भरदे जल जंगल,
आकाश में सागर कहीं नहीं ॥
नर तन सा चोला सींव दिया,
सुई धागा हाथ में कहीं नहीं ।
पत्ते पत्ते की कतरन न्यारी,
हाथ कतरनी कहीं नहीं ॥
दे भोजन कीड़ी कुञ्जर को,
चढ़े भण्डारे कहीं नहीं ।
कर्मों का फल दे यथा योग्य,
मिले रू रियायत कहीं नहीं ॥

दिन रात न्याय में फर्क पड़े न,
लगी कचहरी कहीं नहीं।
अखण्ड ज्योति अपार लीला,
किनहूं न पाया तेरो पार ॥

धन्य धन्य है तेरी कारीगरी करतार ॥२॥

जाने किस विध गर्भ में रहकर,
करदे क्रीडा बालक पन की।
जाने जवानी आई कहां से,
कमी रही न यौवन की।
फिर बुढ़ापा देकर दिखादे सब,
बनी सो एक दिन बिगड़न की।
कोई पैसे पैसे को मोहताज है,
कोई खोल रहे कोठी धन की।
कोई पिया संग कामिनी केलि करें,
कोई रो रो राख करे तन की।
कोई भटक भटक कर उमर गँवावे,
कोई तृप्ति कर रहा मन कन की।
बन पर्वत भूमि रेत के टीले,
कहीं कहीं लहर हरे वन की।

कहीं ताल समुद्र जल से भरे,
कहीं चोटी चमके पर्वतन की।
कहीं सरद वायु के झोंके चले,
कहीं अधिक धूप गरमी घन की।
चातुर मास घटा घिर आवे,
बरस के बहादे जल धार।
धन्य धन्य तेरी कारीगरी करतार ॥३॥
चार वेद छः शास्त्र पुकारें,
तेरे गुणों की शुमार नहीं।
ऋषि मुनि और सन्त महन्त थके,
गा गा पाया पार नहीं।
जो करनी चाहे कर गुज़रे,
किसी काम में तू लाचार नहीं।
जो करदे सो नहीं बदल सके,
किसी और का तेल सहार नहीं।
कर भक्ति रंक गले लिपटे,
विन भक्ति भू से प्यार नहीं।
यह बस्ती राम तेरे द्वार खड़ा,
क्यों इसकी सुनता पुकार नहीं।
सुख स्वरूप दरसा दे अपने,
खोल के अखण्ड द्वार।
धन्य धन्य है तेरी कारीगरी करतार ॥४॥

बालक के कान में ग्रावाज पड़ी, भोजन भूल गया, ग्रावाज को सुनने बाहिर दौड़ गया, ग्रौर बड़ी मस्ती से सुना, ग्राखों में ग्रश्रु भरे हुये हैं ज़ी भर गया, गला भर्राकर याचक से बोला—ग्राग्रो मेरे घर ग्रन्दर ग्रा जाग्रो ! ब्राह्मण साथ ग्रन्दर ग्रा गया ग्रौर बिठा दिया कहा फिर एक बार सुना दो। माता ने कहा भोजन तो कर ले कहा—भोग दाता का भजन है, सुनकर खाऊंगा। ब्राह्मण ने गाना शुरू किया, बच्चे ने भी गाना शुरूकर दिया साथ साथ, कहा एक एक कली को दो दो तीन तीन बार बोलो। ब्राह्मण ने ऐसा गाया, बालक को भजन याद हो गया। जब "पत्ते पत्ते की कतरन कहे" तो बाटिका ग्रौर वृक्षों के पत्ते सामने झूमते दिखाई दें ग्रौर ग्राप भी झूमने लग जाए ग्रौर जब कीड़ी कुंजर········

"तेरे चढ़े भंडारे कहीं नहीं" गावे, पत्थर के नीचे ग्रसंख्य कीड़ियां, मकोड़े, जन्तु सामने दौड़ते फिरते ग्रा जावें तो ग्राप भी उठकर नाचने लग जावे ग्रौर ग्रांखों से ग्रश्रु टप टप करने लग पड़े।

भजन गा चुका। माता पर भी भजन का बड़ा प्रभाव पड़ा; उसकी भी ग्रश्रु पात होने से रुक न

सके। माता ने प्रसन्न चित्त से स्वयं ब्राह्मण के सामने भोजन परोसकर रख दिया, हाथ धुलाना मस्ती के कारण भूल गई। ब्राह्मण ने जल मांगा तो माता को बड़ा पश्चाताप हुआ। तुरन्त उठकर जल से हाथ धुलाए और करबद्ध क्षमा भी माँगी—कहा तेरे भजन ने सुध बुध भुला दी थी, क्षमा करना। ब्राह्मण और बालक ने प्रसन्न होकर भोजन किया। माता ने कुछ पैसे भी भेंट किए। ब्राह्मण ने आशीर्वाद दी। और बालक के सिर पर हाथ फेर कर आशीर्वाद दी। 'वत्स सदा नाम चित रहे !"

ब्राह्मण बाहिर निकला और बच्चा भी उसके साथ हो लिया वह दर दर गली गली से गुजरता, गाता, यही भजन ही गाता, बच्चा भी साथ गाता, गली मुहल्ला की देवियों ने देखा कि एक सेठ का बच्चा है, हाय, हाय इसे क्या हो गया, यह पागलों उन्नमतों की तरह नाचता है, रोता है। एक भिखारी ब्राह्मण के साथ लग गया। एक स्थान एक माई ने कहा अरे दिवाना ! तू क्यों भिखारी ब्राह्मण के साथ फिर रहा है ? ब्राह्मण से कहा कि यह तो सेठ का लड़का है, तू क्यों साथ लिये फिरता है। ब्राह्मण बोला, माता

जी ! मैं तो साथ नहीं ले जा रहा, मैं तो भिखारी ब्राह्मण हूँ, आप मांग के खाता हूँ, इसे कहां से खिला सकता हूं । यह बच्चा तो भजन के प्रेम में मेरे साथ फिर रहा है ।

चूँकि सारे शहर में कई गली मुहल्लों में फिरा, देवियों में चरचा होने लग पड़ी और बालक की माता सेठानी तक बात पहुंच गई । देवियाँ उसे गिला देने और समझाने आई, उसे भी अब होश और समझ आई । पिता घर पर आए—माता ने सब हाल सुनाया और उसे भी गुरु जी की चेतावनी अब सिद्ध प्रतीत होने लगी ।

सत्य भूषण—उपनिषदों में जो यह बात आई है कि ओ३म् का उपासक—एक मात्रा 'अ' का उपासक नेता बनता है, दो मात्रा अ, उ के उपासक के घर में वेद वक्ता संतान होती है और तीसरी मात्रा 'म' का उपासक मुक्त हो जाता है, इसकी समझ नहीं आती । वह एक एक मात्रा की उपासना का क्या अभिप्रायः है ?

प्रभु आश्रित—यह बात बड़ी टेढ़ी पूछी है,

समझना समझाना दोनों कठिन हैं। हां जो मैं समझा हूं उसी से कहूंगा टेढ़ी गुत्थी को क्रिया शील विद्वान समझावेंगे, अभी अभी अ, उ, म की मात्राओं का ही जिक्र रहा। 'अ' से निष्काम कर्म 'उ' से निष्काम उपासना, 'म' से निष्काम ज्ञान अभिप्रेत है। एक बात वही है कि कैसे खोज ब्रह्म 'ओ३म्' की करें।

दूसरी निष्काम कर्म कैसे करें 'अ' की तरह। शब्द की तरह उपासक की समानता हो जावे, वर्ण माला में 'अ' स्वर है अपना प्रकाश आप बिना किसी की सहायता के करता है। कोई भी व्यंजन 'क' से लेकर अन्त तक 'अ' की सहायता के बिना स्पष्ट नहीं बोला जा सकता। क् में जब अ शामिल हुआ अर्थात् क+अ हुआ तो हम क बोल सके और शब्द उच्चारण हुआ या अक्षर बना। अ जिस के लिये सहायक बना, उसने अपने आपको उसमें गुम कर दिया, हम, क, ख ही बोलेंगे। परमात्मा ने अपने को सब में व्याप्त कर अपने को गुम कर दिया। एक व्यक्ति रोगी है उसे औषधि दी गई वह स्वस्थ हो गया, दुःख विनाशक वह प्रभु है, प्रभु देव ने ही उस ओषधि में अपना शिव रूप भरा है परन्तु जब हम कहेंगे तो ओषधि का नाम

कहेंगे कि अमुक ओषधि से मेरा आराम हुआ। ऐसा जो उपासक प्रभु की सत्ता को सब भूतों में जानकर, उन्हीं के लिये उन्हीं के हितार्थ उनमें समा जाता है और अपना नाम प्रगट नहीं करता, यह है 'अ' मात्रा की उपासना। ऐसा व्यक्ति ही सब का नेतृत्व करता है जैसे वर्ण माला में क् आदि अ के बिना अपने को प्रगट नहीं कर सकते ऐसा वह नेता बनता है।

दूसरी है 'उ' की मात्रा। उ भी स्वर है परन्तु यह जिसके साथ लगता है उसे बढ़ा देता है, उसका विकास कर देता है और उसे अपने नाम से चलाता, प्रगट करता है जैसे क्+उ=कु बन गया, अ+उ=ओ बन गया। उपासक की सन्तति ज्ञान है। स्वप्न अवस्था में बस्तु तो वास्तव में नहीं होती परन्तु उसका ज्ञान रह जाता है ऐसे उपासक ने प्रभु को अपने में खींच लिया और उसका ही रूप प्रगट होने लगा भगवान को भक्त से लोग जानने लग सके और ऐसे ज्ञानी के घर में संतान नास्तिक कैसे हो सकती है। असल तात्पर्य तो ज्ञान ही उसकी सन्तति है।

तीसरी मात्रा है 'म्'। म् के कहने से आस्ठ वाणी सब समाप्त बन्द हो जाते हैं तो उपासक की अवस्था

ऐसी हो जाती है जैसे 'म्' । सब निवृति ही निवृति हो गई, सब वासनाएं समाप्त हो गई । अथवा ज्ञान अग्नि से दग्ध हो गई, तो ज्ञान का अन्तिम फल है मुक्ति 'ऋते ज्ञान: न मुक्ति' ज्ञान के बिना मुक्ति नहीं होती । इस मात्रा का उपासक इस शब्द के समान आचरण युक्त हो जावे । शास्त्र कार कहते हैं, शब्द स्वरूप जो महान देव है, उसके साथ समझोता हो जावे । ऐसा आचरण करें जैसा शब्द कह रहा है तो यह हैं 'म' मात्रा उपासना ।

ओम् शब्द है, हम उपासक वैसे बन जावें, उसके गुण कर्म स्वभाव को धारण कर लेवें । मुझे (मैंने) इन अर्थों में अपने में संतोष माना है । बाकी आगे विद्वान योगी जानें । अब आपकी इच्छा हैं, योगी बनकर ओम एक तत्व का अभ्यास करो अथवा साधक बनकर कच्ची पहली 'क' की श्रेणी से गायत्री मंत्र द्वारा जप अभ्यास साधना करते करते उस एक तत्व ओम् तक पहुँचो । मैं जिस मार्ग से चला हूं और चल रहा हूँ उसी मार्ग की जानकारी आप से कराता हूं ।

सत्य भूषण—निन्दा सुनने का रोग बड़ा है, प्राय: सब में यह आपने कहा भी है कि यह भारी पाप

है, इस से बचने का क्या उपाय है।

प्रभु आश्रित—कान की कनपटी पर प्रतिदिन संयम करो पहले वहां धारणा बनाओ, उस कनूड़ी को हाथ की उंगली से पहले कान के छिद्र में दबाओ। थोड़ा थोड़ा अभ्यास बढ़ाओ। फिर कनपटि की नोक पर आंख मूँद ध्यान करो। इस कनूड़ी पर ओम् का अनुसार बनाओ, उसमें लीन हो जाओ तो ऐसे अभ्यास सें निन्दा सुनने में घृणा हो जावेगी।

(ख) जल में चांद के प्रति बिम्ब को देखने से शीतलता आती है, नेत्रों कीं ज्योति बढ़ती है। सूर्य के प्रति बिम्ब को जल में नहीं देखना चाहिए। आँखों में गरमी आती है।

(ग) कठोरता, कृपणता, कृतघ्नता भारी अवगुण हैं इन से बचो। अध्यात्मिक उपदेश और ब्रह्म विद्या ग्रहण नहीं हो सकती, न टिक सकती है। कठोरता वाणी में, कृपणता मन में, कृतघ्नता बुद्धि में होती है, जिनके वाणी, मन और बुद्धि दुर्गुण से ग्रस्त हों, उसे अधिकार कैसे प्राप्त हो।

सावधान रहो

प्रभु उपासना में तीन प्रकार से मत बैठो, हंस मुख उदार बनकर वैठो। कुरुप बनकर, कृपण बनकर, कुसेवक बनकर।

(१) कुरूप होकर न बैठना चाहिए अर्थात न मुँह सुजाकर बैठो न मलिन वस्त्रों से, न मलिन आसन पर परन्तु उत्तम वस्त्र अथवा नित्य पूजा के बना रखो। व्यवहारिक वस्त्रों से न बैठों। अच्छा यही है कि श्रद्धा भक्ति से काता बुना हुआ हो किसी अपने पूज्य देव का दिया हुआ उपहार हो अथवा मांग लो अथवा सामर्थ हो तो उत्तम वस्त्र पबित्र नया उनको देकर उनसे आमंत्रित कराकर प्रसाद रूप में ले लो यह श्रद्धालु लोगों के लिये है, ऐसे पूजा के वस्त्रों को आदर सन्मान से जुदा रखो और अलग धोवो।

(२) कृपण होकर न बैठो अर्थात समय का संकोच न करो, प्रार्थना में कंजूसी न करो। मधुर वाणी बोलो, संसार के कल्याणार्थ अपनी उत्तम सदा बनाओ का दान जरूर करो। दान करने और दीन दुखियों की सेबा करने के विशाल हृदय बनने के लिए

बल मांगो।

(३) कुसेवक, प्रसेवक होकर न बैठो अर्थात अपनी पूजा के स्थान और वस्त्रों को आप साफ करो, नौकरों से साफ मत कराओ, मन में सेवक के से भाव प्रभु के लिये रखो, अहंकार न हो, जैसे दूध में मक्खन तो है परन्तु जब दूध फट जाए बजाए जमने के तब दूध से मक्खन नहीं निकल सकता चाहे पानी और फुटी और काम आ जावे, बल भी दे जावे परन्तु मक्खन का दर्शन नहीं कर सकते। वह दूध या तो फटेगा मैले बरतन के कारण या उसे खट्टा स्वयं डाल कर फिराया जावे। मैले वर्तन का अर्थ है भक्ति करते समय वह कृपण रूप बनकर बैठता है मन में मैल रखता है, अनिष्ट चिन्तन करता है तब भक्ति बाह्य का फल यश आदि मिलेगा, दर्शन न कराएगी। स्वयं खटाई डालने का अर्थ है अहंकार से किसी को शाप देना, कठोर बोलना या अपना बल समझकर कृतघ्न बन जाना, इसी से भी दर्शन नहीं होते॥

सत्य भूषण—मन्त्र योग द्वितीय तथा तृतीय भाग में स्यात् ऐसे ही जीवों के लिए लिखा होगा कि जो

जन्म से योग के संस्कार लेकर जन्म लेता है उसे योग की तरफ ही ज़न्म की रुचि हो जाती है और परमेश्वर स्वयं जिसे चाहता है, जो बनाना चाहता है, बनाता है।

प्रभु आश्रित—हाँ, हां, ऐसे ही जीवों के लिए होता है ऐसे जीवों को समय समय पर ज़ो कुछ दिखाना चाहता है, अपनी प्रेरणा से और स्वयं ही आँख में बैठ कर दिखलवाता है और धारण कराता है, इसमें मुझे पूरा विश्वास है। मैं चाहे इतना ऊंचा नहीं चढ़ा जितना कि चाहिए परन्तु प्रत्येक समय, प्रत्येक मोड़ और प्रत्येक परिवर्तन के समय प्रभु देव ने मेरे साथ भी ऐसा ही किया। मुझे ठीक अपने बालकपन के समय की बात याद आकर इसी पर चरितार्थ होती है। मैं छोटा था, अनाथ था, माता की अवस्था निर्धनता की थी परन्तु मुझ पर बड़ी दयालु थी (होती तो सब की माताएं अपनी सन्तान के लिए दयालु हैं), स्वयं माता अपने अन्दर से तेल के तले टिकड़े गुड़ का तोशा और मरूपडे निकाल लाती और मेरी जेब (खीसे) में आप ही ठुस ठुस भरती और में जरूरत पर उनको निकाल निकाल खाता। ठीक इसी प्रकार बह जगजननी वेदमाता मां स्वयं ही अपने भण्डार से निकाल कर आप ही भक्तों

के अथवा जिन्हें वह अपनी शरण में लेते अथवा लेना चाहते हैं (यमेवैश वृणुते तेनलभ्य:—कठ—जिस को वह चाहती हैं उसे ही साक्षात होता है), शब्द से, रूप से अन्त:करण रूपी जेब में स्वयं भर देते हैं और वही भक्त निकाल निकाल कर आनन्द रस लेता है। यह बात कसौटी का काम देगी।

जो मनुष्य अपने बुद्धि बल, अपने अहंकार से अपने मस्तिष्क में भरता है वह सब नाशवान और स्थाई नहीं होंती, भूल जाती हैं और जिसे अविनाशी प्रभु स्वयं भरते हैं जिसका भक्त उपासक साधक को ज्ञान और स्वप्न तक भी नहीं होता, वह साधक उपासक के हृदय में न निकलने वाला, न मरने वाला होकर सुदृढ़ हो जाता है और प्रत्यक्ष रूप सामने रहता है। दैन तो दाता की अपनी प्रसन्नता, इच्छा पर निर्भर है, याचक दीन के मांगने पर नहीं।

(२) मनुष्य की बुद्धि जब तक जहां तक काम करती है तब तक प्रभु की सत्ता का भान नहीं होता, जिस समय बुद्धि आश्चर्य में आकर विवश हो जाती हैं, वहाँ से प्रभु की सत्ता का आरंभ होता है।

—————

दशम प्रकाश

ओ३म् स्मर

रात्रि का समय है, चन्द्रमां निकला हुआ है। बालक बाहर मैदान में खड़ा है। दृष्टि आकाश पर गई, अनगिनत चमकते तारे देखकर, कोई ऊपर, कोई नीचे, दूर तक दृष्टि की, चकित हो गया। यह कैसे अपने आप चमक रहे हैं ? कोई सहारा भी नहीं। अनन्त तारे कैसे टिके हुए हैं (मन में विचारने लगा)।

पिता तो सदा उसकी ताक मे रहता था। घर के अन्दर न पाकर वह भी बाहर चला गया, देखा तो आकाश में दृष्टि लगाए खड़ा है। पूछा, पुत्र ! यह क्या देखते हो ? कहा—यह तारे किसने चमकाए, कैसे बिना आश्रय खड़े हैं ?

पिता लिखा पढ़ा हुआ था, बोला, यह उसने चमकाए हैं जिसके पीछे तुम परेशान हो रहे हो। और उसी परमात्मा के आश्रय स्थित हैं, वही ही इनकी टेक—आधार है। स्तम्भ है और बोलने लग पड़ा :-

हिरण्यगर्भः समवर्त्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक ग्रासीत् ।
स दाधार पृथ्वीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥

चलो पुत्र ! वापस घर चलें । अब सोने का समय है । रात्रि को स्वप्न में भी ऊपर बालक आकाश की सृष्टि में घूमता रहा ।

दूसरे दिन जङ्गल गया शौच के लिए तो कई एक शूकर और शूकरनियां विष्टा ढूंढ ढूंढ कर खा रही थीं और छोटे छोटे बच्चे उनके साथ थे । माता का दूध पीने लगे । बालक ने मन में सोचा कि यह खाती विष्टा हैं, दूध कैसे बन जाता है । शूकरनी के स्वामी भंगी से पूछा, वह बोला—यह उसी प्रभु की शान है, वही बनाता है । शूकरनी के अस्थि, मांस दुग्ध उस विष्टा से जिस फल मेवा अन्न से तुम्हारी माता का बनाता है । इससे उसे सहसा सब खाद्य पदार्थों से मोह हट गया ।

पिता अपने बालक की चरचा सुन बालक को गुरु के पास ले गया और प्रश्न किया—कि भगवन् ! मैंने जो अपनी कभी कभी आनन्द समाधि का वर्णन किया था, क्या इस समाधि से भी कोई लाभ है ?

गुरु—आप व्यवहारिक संसार के विषयों में फंसे हुये हो। चूंकि आप लोग धर्म कार्यों में रुचि रखते हो, आप रजोगुणी हो आप के चित्त में सत्व रज दोनों हैं, मूढ़ और क्षिप्त लोग अर्थात मोह ममता से ग्रस्त उन्मत लोग और चञ्चल वृत्ति वालों की समाधि तो कभी लग ही नहीं सकती। हाँ हाँ आप जैसे धर्म रुचि वालों की लग सकती है कभी कभी परन्तु उसे योग समाधि नहीं कहते। ऐसे तो कविता बनाने वाले कवि लोग भी एकाग्रवृत्ति होकर बनाते हैं। बहुत उत्तम से उत्तम भजन बना लेते हैं जो लोगों को बहुत भाते हैं, वह भी अपनी एकाग्रता को समाधि ही समझते हैं। वास्तव में तो जिनकी चित्त की भूमि एकाग्र है, उसकी समाधि योग समाधि कहलाती है।

पिता—भगवन् उसका भेद अथवा कोई कसौटी या चिन्ह है!

गुरु—योग दर्शन ने कसौटी रखी है कि योग समाधि (१) अविद्यादि पांच क्लेशों को क्षीण करती जाती है। वह पांच क्लेश हैं—अविद्या, ऽस्मिता, राग, द्वेष और अभिनिवेश=मृत्युका कष्ट-दुख। (२) कर्म के बन्धनों को ढीला करती है, (३) निरुद्ध अवस्था

की तरफ प्रवृत्ति और झुकाव पैदा करती है और विक्षिप्त वालों की समाधि अहंकार पैदा करती है। और अहंकार ही तो राग द्वेष और सब पापों को अपने गृह पर निमन्त्रण दिया करता है।

अब तुम स्वयं अपने मन में झांक लो, यदि तुम्हारे रागद्वेष अथवा अहंकार स्वार्थ काम, क्रोध आदि क्षीण हो रहे हैं तो योग समाधि है, नहीं तो तुम भी भूले न रहना। यह तो तुम देखते ही हो कि अच्छी कविता बनाने वालों को प्रत्येक स्थान से निमन्त्रण आते हैं और लोग उनका बड़ा आदर मान करते, पुनः पुनः उनको श्रवण करते हैं परन्तु वह बहुत कुछ अर्थ संग्रह करते हैं और जिनको लोभ नहीं, उनको अहंकार और भी अधिक बढ़ जाता है। मन तो प्रिय, विद्युत के समान तरंगें पैदा करता है। विद्युत सदा टेढ़ी मार करती है, यह मन भी 'ब्रिश्चीराजी' है, इसे बिना साधन के वश में नहीं किया जा सकता।

पिता—फिर ! प्रभो ! आप ने मुझे कहा कि आत्मा परमात्मा तो सब प्रतीति ज्ञान हैं—'एक आत्म प्रत्ययसारः'। इस प्रतीति का कोई दृष्टान्त भी है ?

जब आप ने कह दिया कि दरद, उदासीनता, चिन्ता के समान भी नहीं, न इद्रियों से साक्षात हो न मन बुद्धि से अनुभव हो तो प्रतीत कैसे करें ?

गुरु—अच्छा देखो, मैं तुम्हें इस बालक से प्रतीति, यथार्थ प्रतीति कहलवाता हूं ।

अच्छा पुत्र ! बोलो (दैवयोग से उस समय सब वस्तुएं पास थीं) । (नीचे हाथ लगाकर)—यह क्या है ?

बालक—पृथ्वी है ?

गुरु—(जल का पात्र भरा था)—यह क्या है ?

बालक—जल हैं ।

गुरु—(चूल्हा ज़ल रहा था, उस ओर संकेत कर) यह क्या है

बालक—अग्नि है ।

गुरु—(पंखा चलाकर)–यह क्या अनुभव किया ?

बालक—यह वायु है ।

गुरु—अब सामने ऊपर इधर उधर देखो—यह क्या है ?

बालक—आकाश है ।

गुरु—सत्य बोलो–क्या है ?

बालक—आकाश ही तो है।

गुरु ने फिर कहा, क्या तुम देख रहे हो ? सत्य कहो असत्य मत बोलना।

बालक—गुरु देव ! कह तो रहा हूँ, देखकर तो कह रहा हूं कि आकाश है, आकाश है भगवन् ! यही आकाश है।

गुरु—देखो सेठ ! तुम अब विचार करके कहो ! तुम भी देख रहे हो कि नहीं ?

पिता—हां महाराज ! मैं भी देख रहा हूं, वास्तव में यह आकाश है।

गुरु—अब तुम तो पढ़े लिखे व्यक्ति हो, बालक तो सूक्ष्म बात को अभी जान नहीं सकता, हाँ उसे समझ है–समझ जायगा बोलो ! इस पृथ्वी में आकाश है ?

पिता—हां महाराज ! अन्दर भी आकाश और बाहर भी आकाश है।

गुरु–बोलो, इस जल में आकाश है ?

पिता—हां महाराज !—अन्दर और बाहर भी आकाश है।

गुरु—इस अग्नि में आकाश है ?

पिता—हाँ महाराज अन्दर और बाहर आकाश है।

गुरु—इस वायु में आकाश है।

पिता—हां महाराज–अन्दर और बाहर आकाश है।

गुरु—बोलो ! आकाश इन सब में रहता हुआ सबसे न्यारा है या नहीं ?

पिता—हाँ महाराज–नितांत तटस्थ है, न्यारा है।

गुरु—इसमें विकार है क्या ?

पिता—नहीं महाराज ! निर्विकार है, निर्मल है निर्दोष है, रूप, रस, रंग, गन्ध, स्पर्श से रहित है।

गुरु—यही प्रतीति ज्ञान है जिसे तुम स्वयं यथार्थ सत्य कह रहे हो। वेद ने यही दृष्टांत दिया—'ओ३म खं ब्रह्म' !

पिता—फिर जैसे यह आकाश सर्वत्र व्यापक है, निर्मल, निर्दोष, निर्विकार है अथवा इसे यदि हम परमेश्वर मान लेवें तो कितना सुगम हो जावे ! फिर हम कहें कि हम ने ब्रह्म को साक्षात कर लिया।

गुरु—प्रिय ! सर्व व्तापक नहीं यह व्यापक है। पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और उनके बने पदार्थों में।

जड़ में है, चेतन जीव और चेतन ब्रह्म के अन्दर नहीं है। भले जीव सब इस में रहते हैं परन्तु ब्रह्म तो इसके बाहर भी है। यह भी समझ लो कि यह स्थूल जगत में है, सूक्ष्म तन्मात्राओं जिनसे यह स्वयं उत्पन्न हुआ है, उसके परमाणुओं में भी नहीं हैं। इस आकाश को तुमने बाहर से प्रतीत किया, तुम अन्दर उस महा आकाश को अपने जीव आत्मा के अन्दर जब प्रतीत करोगे, तब कह सकोगे ब्रह्म का साक्षात किया। यह दृष्टांत आकाश का है तो हीन उपमां परन्तु उससे आगे हमारी बुद्धि समझ नहीं सकती, इसलिए वह समाधि से जानने और प्रतीत करने योग्य है।

पिता—ठीक समझ में आ गया, वह आत्मा है जानने योग्य ! इसका नाम ओ३म् है। आप कहते हो (१) इसका अर्थ जाने बिना जपने का अधिकार नहीं। योगी जानकर जपता है।

(२) एक मूढ़ जैसे गंवार लोग हैं, श्रमी व्यवसाय के हैं, कुल्ली हैं जिन्हें गायत्री मन्त्र याद भीं नहीं हो सकता मनन करने पर भी तो वह यदि ओ३म् का जाप करें तो क्या आपत्ति है ? या यह बच्चा ओ३म्

जप करे तो क्या आपत्ति है ?

(३) तीसरी बात मेरे समझने की है कि एक सन्त उपदेश दे रहा था कि ऐ सांसरिक लोगों ! तुम से कुछ नहीं बनता तो राम नाम का जप करो। जो लोग यह कहते हैं कि मिश्री मिश्री कहने से मुख मीठा नहीं होता इसलिए राम राम का जाप करने से तुम को राम कैसे मिल जावेगा ?

देखो ! मिश्री और जिह्वा में अन्तर है इसलिए जब तक मिश्री मुख में न रखोगे अर्थात जिह्वा से स्पर्श न करोगे, तब तक मिठास नहीं आयगा। भाइयों ! मिश्री और जिह्वा दोनों जड़ वस्तु हैं, इनमें दूरी है देश की दूरी है। शब्द राम में तो परमेश्वर विद्यमान है मुख में भी परमेश्वर विद्यमान है, इसमें कोई अन्तर नहीं, दूरी नहीं है, केवल ज्ञान की दूरी है। तुम्हें इतना ज्ञान तो है एक राम रोम रोम में रम रहा है चाहे सुना हुआ है। यह भी जानते हो कि राम हमारा भगवान् है, हमारा आश्रय है और जब तुम राम नाम का कीर्तन करते हो, सत्य बोलो तुम्हें आनन्द रस आता है। तो फिर मिश्री के रस से क्या यह कम रस है। मिश्री तो खरीद करनी पड़ती है पैसे से जाकर दुकान से

लानी पड़ेगी। अरे मूर्खों ! संसार के धन्धे करो, बन्दे (गुलाम) न बनो ! बन्दे बनो तो अपने भगवान् के बनो जो बिना दाम कहीं आए गए पग उठाए तुम्हारे हर समय पास है। राम नाम की कमाई कर लो !

भगवन् ! मैं राम नाम तो नहीं जपता न उसके सम्बन्ध में चरचा करता हूँ, मैं 'ओ३म्' नाम जिसे वेद ने कहा है और सब शास्त्र इसी ओ३म् नाम से आरंभ होते हैं तो क्या ओ३म् शब्द में ओम् अक्षर में वह ब्रह्म ओम् मौजूद नहीं है। यदि हम इसका जाप करें शिव भाव से, तो क्या आपत्ति है ?

गुरु—बात तो उस सन्त ने बहुत अच्छी कही, संसारी लोगों को अच्छे मार्ग में लगाने की विधि बहुत सुन्दर है उनका भाव संसारी लोगों को ऊंचा उठाने का है। ऐसे मूढ़ लोग श्रमी कुल्ली जिनसे गायत्री मन्त्र याद नहीं होता यदि वह भक्ति भाव से श्रद्धा से इस ओ३म् नाम का जप करें तो उनकी बुद्धि भी निर्मल बनती जावेगी। श्रद्धा से मनुष्य को ज्ञान की प्राप्ति होती है। राम नाम एक गुणी नाम है, इसलिए सर्वगुणी नाम जोवेद ने कहा है वह ओ३म् है। इस

बालक को भी ओ३म् का जाप करना चाहिए, इसने पदार्थों में स्वप्न में प्रतीति कर ली है।

माण्डूक्योपनिषद् के मन्त्र ८ में भी कहा है :–

सोऽयमात्मोऽध्यर्क्षरमोंङ्कारो ऽधिमात्रं पादा मात्राश्च पादा अकार उकार मकार इति ॥ ८ ॥

अर्थ—वह यह चार अवस्थाओं वाला ब्रह्मात्मा अक्षरों में घटने वाला अक्षरों में कहा जाने वाला 'ओ३म्' है।

अर्थ ज्ञान काल में अर्थ जानने वाले के प्रति संज्ञा संज्ञी का अभेद हो जाता है, अर्थ ज्ञान न होने से भेद प्रतीत रहता है।

तो पहली अवस्था तो तीन मात्रा वाले ओ३म का जाप श्रद्धा भक्ति भाव से करना चाहिए। मैं एक सरल साधन बताता हूँ। बालक तो संस्कारी है इसे तो पूर्ण विश्वास हो जावेगा। आप में शायद न हो सके वह साधन यह है :—

शास्त्रों ने और वेद ने भी कहा है, वह ब्रह्म—ओ३म् नामी एक कवच है। कवच के पहन लेने पर

शत्रु का वार घातक नहीं होता। ओ३म् का अर्थ रक्षक है। जिस स्थान पर आसन लगाकर बैठना हो उसके डेढ़, डेढ़ फुट इर्दगिर्द चारों ओर एक गोलाकार काल्पनिक लकीर हाथ की अंगुलियों से घेरा फेर कर बना दो और दोनों हाथों को ऊपर मिलाकर डेढ़ फुट सिर से ऊपर दोनों को फैला दक्षिण हाथ डेढ़, डेढ़ फुट दक्षिण ओर और वांम हाथ डेढ़, डेढ़ फुट वांम ओर अपने शरीर के गिर्द नीचे इसी लकीर को गोलाकार से मिला दे और मन में यह धारणा (तस्सवुर) बना ले कि यह ओ३म् नाम कवच है अथवा मच्छरदानी समान है। कोई सर्प, बिच्छू, चीता, पापी और पाप के परमाणु इस गोलाकार कवच के अन्दर नहीं आ सकते। फिर आँखें मूंद हृदय अथवा त्रिकुटि में ध्यान जमा ओ३म् का जाप कण्ठ से वाणी से जिह्वा को उलटा तालु के साथ लगा श्वास रोक कर एक श्वास में सुविधा से जितनी संख्या में कर सको, करो! जब श्वास निकलना चाहे, दीर्घ श्वास लेकर फिर उसी विधि से जाप करो, इससे मन बाहर न जायगा, धीरे धीरे समय बढ़ाना, थकान न होने पावे। सहज स्वभाव से करना, इससे शीघ्र सफलता होगी।

सत्य भूषण—भगवन् ! एक प्रश्न मन में उठ रहा है। भय होता है कि कहीं अप्रासङ्गिक न हो। है बड़ा आवश्यक। यदि आज्ञा हो तो कर दूं।

प्रभु आश्रित—शङ्का का शीघ्र ही निवारण करा लेना चाहिए. नहीं तो या वह बार बार मन में उठकर व्याकुल करती रहेगी अथवा समय बीत जाने पर विस्मरण हो जायगी।

सत्य भूषण—बड़ी कृपा। प्रश्न यह है कि अनगिनत बासनाएं जो मन में उठती रहती हैं, यही जन्म दिलाने का कारण बनती हैं। श्री महाराज जी ने मन्त्र योग तृतीय भाग में भ्रामरी प्राणायाम में ओ३म् की ध्वनि से इन वासनाओं की दूरी पाँच प्रकार की बतलाई हैं, उनका रूप क्या बनता है ?

प्रभु आश्रित—वासनाएं भ्रामरी प्राणायाम में आकाश से विद्युत विशेष के आने पर दब जाती, सो जाती, हट जाती, मिट जाती अथवा दग्ध हो जाती हैं। इनका रूप क्रमशः निम्न प्रकार समझिए :—

दब जाना—जिस प्रकार पर्वतीय प्रदेश में बीज हिमके नीचे दब जाता है, हिम के पिघल जाने पर वह

बीज़ उगना प्रारंभ हो जाता है ऐसे पुण्य कर्मों के प्राबल्य से पाप कर्म की वासनाएं और पाप कर्मों के प्राबल्य से पुण्य कर्मों की वासनाएं दबी रहती हैं अथवा जिस प्रकार इतर कार्यों में व्यस्त होने से दुकान दार अपनी दुकान के कार्यों में ऐसा ग्रस्त हो जाता है कि भूख प्यास, शौच आदि तक की भी स्मृति नहीं रहती। दुकान के कार्य से निवृत हुआ किस्मृति क्षुधा पिपासा कीं हो गई। संस्कार और स्मृति एक रूप बने रहते हैं।

सोजाना—संस्कार वासनाएं जमा रहती हैं सोए के समान। जिस समय जो कर्म भोग कराने के लिए तय्यार होता है उस समय उस कर्म का जैसा फल होने बाला होता है, वैसा ही वासना उत्पन्न होती हैं, अन्य वासनाएं सोई रहती हैं। शिशु में काम और अहंकार आदि के संस्कार सोए पड़े रहते हैं। जब बड़ा होता है, अपनी आयु में पहुँचता है तब उनके भोग की इच्छा पैदा होती है अर्थात वासनाओं की स्मृति जाग पड़ती है।

मिटना—जो वासनाएं कर्मफल दे चुकती हैं वह मिट जाती हैं। अन्न बहुत हुआ। एक दाना के सैंकड़ों

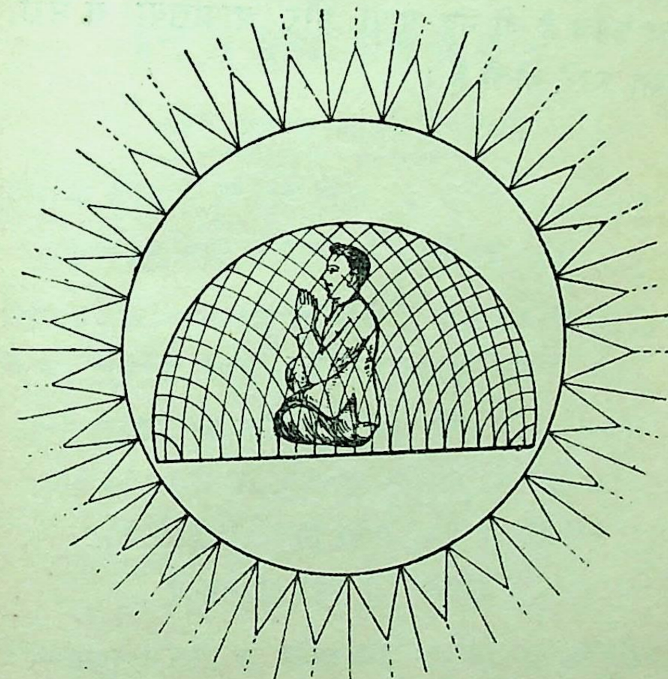
हुए। अब जो खाए गए वह उगने के योग्य न रहे, मिट गए। और जो शेष बचे यदि उन पर पानी लाग हो गया तो वह भी उगने के योग्य न रहे। जिन कर्मों के संस्कारों ने आयु और जाति बना दी, वह मिट गए। भोग वाले दबे रहते हैं, सोए रहते हैं उनको हटाना और जलाना होता है।

हटाना—विवेक ज्ञान उत्पन्न होने पर वासनाओं के संस्कार चित्त की स्मृति से हटकर अपने कारण में क्षीण होकर लीन हो गए, उनमें भी पाल देने की शक्ति न रही जिस प्रकार मिट्टी के एक ढेले ने पत्थर की चट्टान पर आक्रमण किया और वह चूरा चूरा होकर पृथ्वी में लीन हो गया। अथवा जिस प्रकार जल की बूंदें तपे हुये तब्बे पर पड़े तो वह भाप बन कर उड़ जाए। अन्तिम है

दग्ध होना—जला देना जैसे चन्ने को भून दिया, चना तो रहेगा परन्तु उगेगा नहीं। जब आत्मा और चित्त का स्वरूप जुदा जुदा ज्ञान में आ गया। आत्मा ने अपना आत्म रूप जान लिया तो ज्ञान परिपक्व हो गया। अविद्या अज्ञान जन्म देने वाले अहंकार और

राग द्वेष न रहे, तब उसे दग्ध होना कहा।

सत्य भूषण—भगवन् ! बहुत बहुत धन्यवाद। इन प्रश्नों के समाधान से कितनी समस्याएं हल हो गईं। अति कृपा की। जीवन प्रर्यन्त यह आभार छत्र छाया बनकर श्री महाराज जी के उपकारों की स्मृति कराता रहेगा। अस्तु।



चित्र में जो सूर्य से निकलती हुई किरणों को उपासक

पर पहुंते हुए दिखाया गया है उस का तात्पर्य यह है कि जैसे सूर्य की किरणों से अन्धकार का नाश होता है वैसे ही सूर्यों के सूर्य, ज्ञान भानु (भगवान्) की ज्ञान किरणें जब उपासक पर पड़ती हैं तो उस का अज्ञानान्धकार दूर होता है और वह यह अनुभव करने लगता है कि 'ब्रह्मवर्च ममान्तरम्' परमात्मा मेरा अन्दर का कवच है जो सब पापों और आपत्तियों से मेरी रक्षा करने वाला है।

———

ओ३म्

एकादश प्रकाश

ब्रह्म प्रकाश

विष्णोः कर्माणि पश्यत यतो व्रतानि पस्पशे।
इन्द्रस्य युज्यः सखा ॥ यजु०

प्यारे प्रभु के कामों को देख।

भक्त के हृदय से निःस्रत स्रोत का धारा प्रवाह—ब्रह्म प्रकाश, कविता में पढ़िये और आनन्द उठाइए।

तिथि ११-१२-५० कड़ोली ग्राम है, नहर का किनारा है, ज़िला रोहतक अदर्शन मौन चन्द्रायण व्रत में अनायास पहला बन्द मुख से निकला कि धारा बहने लग गई. उसी को अक्षरशः पाठकों के चिन्तन तथा विनोदर्थ वही स्रोत यहां प्रवाहित किया जा रहा है। अस्तुः

१. सतासत् का भेद न जाने। सत् देव को क्या बखाने॥
(कैसे व्याख्या करे)

२ सत् प्रकृति सत् है जीव। सत् परमेश्वर, सत् है नींव॥

३ प्रकृति का है जग पसारा। परमेश्वर का नहीं, स्वरूप न्यारा॥
४ जीव स्वयं न जाने अपना आप। तीनों सत् की कोई है माप?
५ प्रकृति जड़ है चेतन नाहीं। जीव चेतन, पर रहे जड़ माहीं॥
६ स्वरूप परमेश्वर है आनन्द। भोगे जीव पर आँखें बन्द॥
७ परमेश्वर है दोनों में बसता। अचरज! जीव जान न सकता॥
८ जन्म अनेक जुग बीते अरबों। बीत जांयगे ऐसे खरबों॥
९ फिर भी जीव रहे भरमता। जब लग जीव विषयों में रमता॥
१० विषयों में माने भारी सुख। भ्रम ज्ञान से पावे दुःख॥
११ इस भ्रम ज्ञान को कैसे हटावे। जब भगवत् भक्ति में मन लावे॥
१२ मन पहिचान भी इसको नांहीं। मन ही तो है विषयों का साईं॥
१३ मन अहंकार जब होते एक। उपद्रव मचाते जग अनेक॥
१४ मन को विषय कौन सुलझाता। चित्त है विषय स्मृति दाता॥
१५ इनमें एक है बहुत स्यानी। चतुर विशाल वह बुद्धि राणी॥
१६ यह हैं साधन जीव के चार। बुद्धि, मन. चित्त, अहंकार॥
१७ चारों का है अन्दर घर। उस घर के हैं नव (९) दर॥
१८ दो खिड़की और इक द्वार। जिन से जानत सब संसार॥
१९ दो हैं नाली करें सफ़ाई। घर के अन्दर क्या सुरंग बनाई॥
२० यह घर राजा का शीश महल! अध. उत्तम, मध्यम त्रिमंज़िल॥
२१ अध उत्तम नौ द्वार बनाए। मध्य मंज़िल कुछ नजर न आए॥
२२ क्या अचरज, यही लीला सारी। मध्य मंजिल की रचना भारी॥
२३ प्रभु कृपा का नहीं कोई अन्त। जे कोई भजे साचा भगवन्त॥
२४ चित्त बुद्धि और मन अहंकार। सब की बांट करे व्यवहार॥
२५ चित्त, बुद्धि और पांच ज्ञान। इन्द्रियों का तू सुन विख्यान॥
२६ आंख, नक, त्वचा और इक जबान। दांए बांए हैं दो कान॥
२७ मन अहंकार में कर्म समावे। पांच इन्द्रियों को वह गिनावे॥

२८ गुद, उपस्थ, कर और पाग (पाऊँ)। ऊपर रहती मुख में वाक्॥
२६ घर शरीर हो तुल शमशान। भगवान न रखता इनमें प्राण॥
३० इन प्राणों का है खेल गुसाईं। इन द्वारा भगवान् ध्याईं॥
३१ काम गिनें तो पांच है प्राण। नाम गिनाए तो दस ही जान॥
३२ प्राण नाम हैं पहला प्राण। प्राणियों को देता जीवन दान॥
३३ दूसरे प्राण का अपान है नाम। मल विसर्जन, दुःखहरण करता काम॥
३४ उदान तीसरे का अजब फल। शरीर, मन में देता बल॥
३५ समान चौथे का होता यश। खाए भोजन का बनावे रस॥
३६ व्यान प्राण है पांचवां भाग। है सारे शरीर को देता लाग
३७ उप प्राणों के भी पंच भाग। कूर्म, कृकल, देवदत्त, धनञ्जय, नाग॥
३८ शरीर की रचना विचित्र बिचार। अष्ट चक्र और एक गुप्त द्वार॥
३६ हैं नस नाड़ी बेशुमार। करोड़ बहत्तर लाख बहत्तर दस हजार॥
४० इसके भी ऊपर दो सौ एक। शास्त्र बताते यही हैं लेख॥
४१ रोम लोभ का अन्त नहीं। सिर के बाल गिने न जाए॥
४२ साढ़े तीन करोड़ हैं रोम। सच झूठ यह जाने ओम्॥
४३ मानव जीवन का सांस आधार। छः सौ ऊपर इक्कीस हजार॥
४४ सांस ले दिल कायम रहे। हर सांस में धड़कन होती छः॥
४५ हिसाब श्वासों का करें शुमार। श्वास पल में लेता छः बार॥
४६ एक घड़ी के पल हैं साठ। छः साठों का तीन सौ साठ॥
४७ साठ घड़ी दिन रात बनाओ। तीन सौ साठ में साठ गुणाओ॥
४८ अब पूरी होगई शुमार। छः सौ ऊपर इक्कीस हजार॥
४६ इस शरीर में बड़ा खजाना। पंच कोष में है समाना॥
५० अन्न, प्राण मनोमय कोष बतावें। विज्ञानमय, आनन्द मय कोष कहावें॥

५१ कहने को दिल गुरदा तिली बनाई। जिगर, मेंदा, फुफस और वही न जाई॥

५२ प्रभु रचना का नहीं शुमार। कौन कर सके विस्तार॥
५३ वेद- वैद्य और योगी जानें। पूरण सत्य इक प्रभु ही जानें॥
५४ मानव के लिए चार पदार्थ। धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष कहात।
५५ कार विवहार से अर्थ और काम। धर्म से सिद्ध हो मोक्षधाम॥
५६ अर्थ काम के गुरु अनेक। मोक्ष मार्ग न बताए एक॥
५७ ब्रह्म मार्ग को ब्रह्म निष्ठ ही जाने। तेरा गैरा और न जाने॥
५८ मोक्ष धाम का हो जो प्यासा। ढूंढ ढूंढ करे जिज्ञासा॥
५९ ब्रह्म मार्ग में श्रद्धा सुख। योग गुरु में धोखा दुःख॥
६० तिल भर जाने मन भर दीखे। फंस जाते अनजान सरीखे॥
६१ चतुर शिष्य करें गुरु परीक्षा। तब लेते हैं गुरु से दीक्षा॥
६२ गुरु भी होते हैं होशियार। शिष्य बाल की लेते खाल उतार॥
६३ गुरु कसौटी शिष्य है सोना। जो उतरे पूरा फिर करदे सोना॥
६४ शिष्य गुरु करें गोष्ठ ज्ञान। राखें एक दूसरे का पूरा मान॥
६५ न तिल ऊपर न तिल नीचे। रहते सदा आपस में सीचे॥
६६ गुरु को शिष्य ने मथा टेका। गुरु ने शिष्य का मथा देखा।
६७ मथा देख गुरु बन अयाना। कहत भय्या मैं अन्धा न हूं काना॥
६८ मूर्ख को मूर्ख क्या समझावे। स्याना भी जब उस भेद न पावे॥
६९ शिष्य के बात समझ में आई। गुरु कहने में है रहस्य दिखाई॥
७० शिष्य बोला, गुरु! तू मूर्ख पक्का। मैं भी मूर्ख पर हूं अभी कच्चा॥
७१ गुरु बोला, पूछ भला क्या पूछत है। बिन पूछे अब नहीं छूटत है॥

७२ शिष्य मुट्ठी बांध जगत में आया। इसमें क्या है राज समाया॥

७३ बच्चा है निष्पाप पर अयाना। ऊ आ ऊ ओं करते दिन रैन बियाना
(वेसमझ) बिताया)
७४ मात पिता धन भ्रात न तात। ओम् ओम् रटत रहे दिन रात॥
७५ काम क्रोध और लोभ अहंकार। सुप्त रहे सब मोह की तार॥
७६ योग साधन का यही है फल। निष्पाप योगी हो बच्चा सरल॥
७७ तिस की मुट्ठी में जगत समाया। एक हाथ प्रकृति, दूजे ब्रह्म बसाया।
७८ जिस मन जीता तिस जग जीता। प्राणी सब मरते, वह रहे जीता॥ (नाम से)
७९ लक्ष्य जन्म मानव यही देह। शत्रु जीत के देह करे क्षय॥
८० बच्चा एक बांध रखे दो। मात प्रकृति, ब्रह्म पिता जो॥
८१ मूर्ख वह जो मुट्ठी खुलावे। शत्रु हार पसार खाली हथ जावे॥
८२ शिष्य! मूर्ख बनना नहीं आसान। वह मूर्ख, मैं मूर्ख, कैसे कैसे करे पहिचान॥
८३ मूर्ख वही जिसे नहीं अहंकार। बच्चा मूर्ख-योगी मूर्ख, बसें संसार॥
८४ दोनों रहते बे सुध बुध। विषयो से नहीं उनका युद्ध॥
८५ विनय करूं मैं दीजो खोल बताया। अन्दर बाहर एक दो, मध्य से नाद चलाए॥
८६ आंख, कान, नाक दो दो बाहर। आत्मा अन्दर एक, मध्य बाणी करे ज़ाहर॥
८७ शरण तेरी मैं आया बनके बुद्धि हीन। मानुष के दो अपने बस, दो हैं ईश आधीन॥
८८ आंख मुख में रहें मानव वस। जब खोले जब चाहे करदे बस॥
(वश) (समाप्त)

८९ नाक कान सदा रहें खुले। बन्द करें तो मौत झूले॥
(मृत्यु हो जाए)

९० देह आत्मा के हैं दोनों प्राण। प्रभु किया है यही अद्भुत दान॥
९१ नाक देह को प्राण है देता। कान ही आत्म ज्ञान है देता॥
९२ ऊपर नीचे कान आंख का। हिलत टिंकत भी नहीं समझा॥
(हिलना, टिंकना)

९३ क्या भरे राज़ अजब अजूबे। शरम से मारा जाता डूबे॥
९४ पढ़ लिख आयु ऐंबें गंवाई। मूल तत्व की समझ न आई॥
९५ अब मैं शरण तुम्हारी आया। गुरु चरणों में सीस झुकाया॥
९६ सीस रहा अकड़ा तक अब। अकड़ से करता रहा मैं बक बक॥

९७ बहुत कमाया, बहुत सुनाया और रिझाया लोगों को।
अपने पल्ले कुछ न पाया; भोगा मैंने भोगों को॥

९८ अब हो कृपाल दयाल, हो निहाल गुरुवर।
तृप्त हो जाओं तेरा अमृत रस पी कर॥

गुरु ९९ दयाल भए, सीस उठाए शिष्य ऊपर।
रहस्य बताए सीस बिठाए युक्ति दे दे कर॥

१०० सुन आदेश संदेश उपदेश सिर हिलावत हैं।
अपने भले की बात सुन जो मुख मोड़ जावत हैं॥

१०१ कान ऊपर सिर टेढ़े, पशु जात कहावत हैं।
आंखें ऊपर कान टिकट, मानव देह को पावत हैं॥

१०२ विद्यालयों में बिद्यार्थी जो कान लगाकर नही सुनते।
गुरु उन शरारतियों के कान फिरें धुनते (खेंचते)॥

१०३ कान टिके मानव के चित्त उपदेश धरे।
आंख ऊँची श्रेष्ठ बनाई जो साक्षात करे॥

१०४ अब पूछ सौम्य ! और क्या सीखन चाहता है।
समझ में क्या बैठ गई या घर को जाना चाहता है ॥
शिष्य १०५ योग विद्या को मैं सीखूं संसार सर से पार हो
आत्म दर्शन करके छोड़ू जो मेरा उपकार हो ॥
गुरु १०६ योग विद्या ऐसी कठिन, जैसे कठिन संग्राम युध्द ।
सोई विजय होता तभी, जो राखे योधा की बुध ॥
१०७ जगका बन्धन है प्यारा, लोभ मोह परिवार का ।
काम सैना, क्रोध सैना, और पसारा अहंकार का !
१०८ बाहर पकड़ा अन्तः जकड़ा, मानव इस संसार में।
विषय वासना अनगिनत, देह के नस नाड़ में ॥
१०९ है पड़ी क्या तुझे, आराम से विश्राम लें ॥
और भी तो हैं जगत में, योग युध्द क्यों नामले ॥
११० सिर तली पै हाथ धर, विरला आता है नजर
आयु भर तप को साधता, जाता इस राह गुजर ॥
१११ मात गर्भ में उलटा लटके । कीनिम बहुत पुकार ।!
११२ नरक कुम्भी से प्रभु मुझको । बाहर करदो अबकी बार ।
११३ मैं प्रतिज्ञा करता गर्भ में । तेरे साथ करतार ॥
११४ महेश्वर पद को प्राप्त कर । करूं आत्म राज अधिकार ॥
११५ मैं तो आया सब त्याग कर। गुरु ! तेरे दरबार ॥
१३१ त्याग वस्तु अब लेता नहीं । करे जो सो करतार ॥
गुरु ११७ कौनसा योग तुम सीखा चाहो ! योग के हैं कई प्रकार ॥
११८ राज योग, हठ योग प्रसिद्ध हैं ।
मन्त्र, लय और सहज पुकार ॥
११९ नाद सुरत शब्द योग भी होता । तुम्हें कौन दरकार ॥
शिष्य १२० मैं तो जानत एक नांही । जो सिखाओ, सोई स्वीकार ॥

गुरु १२१ भक्ति योग में है प्रेम मूल। बिना प्रेम के भक्ति धूल॥
१२२ योगाभ्यास की तप है नींव।
ज्ञान वैराग्य भगावे जींव (ज्यों)॥
१२३ सत्य उपदेश से साधन साध।
कभी न कर इस में प्रमाद॥
१२४ हैं यम नियम के यह मोटे अंग।
आयु भर रहो करते, इनका संग॥
१२५ शरीर से हरदम हरकत रहती। आसन जमाने से है बरकत रहती॥
१२६ आसन अनेक, तुम सुख स्थिर करो एक।
शरीर की सास हैं न बड़ी टेक॥
१२७ धीरे धीरे आसन जाओ बढ़ा।
तीन चवालीस तक रहे आसन जमा॥
१२८ इससे आसन सिध्द हो जाए। चित्त एकाग्र सगम बन जाए॥
१२६ प्राणायाम है परम तप। साथ साथ प्रणव नाम जप॥
१३० रेचक यूरक खुम्भक नाम। इन्हीं से पावे चित्त विश्राम॥
१३१ रेचक शरीर के रोग निवारे। रेचक कुम्भक बलमन पसारे॥
१३२ पूरक प्राण जीवन का दाता। पूरक कुम्भक है आयु बढ़ाता॥
१३३ दांए बांए नाक से सुर। चयने में वह रखते गुर॥
१३४ ईड़ा!पिङ्गला योगिक नाम धरावें। तीसरी ब्रह्म नाड़ सषुम्णा कहलावें॥
१३५ प्राणायाम का फल है उत्तम। क्षीयते प्रकाश आवरणम्॥
१३६ रेचक करते दो बन्ध साधो। मूल उड्डियान के नाम अराधो॥
१३७ मूल बन्द से गुदा सुकेड़ो। उड्डियान के बन्द से पेट मेरु को मोड़ो॥

१३८ कर पहला रेचक कै वनांए। अगले रेचक कर शनैः शनैः ।।
१३९ हठ कर प्राण न रोक कभूं । प्राण बल मस्त हाथी है जूं ।
१४० ज़ोर पड़े जब पेड़ पर । मूत इन्द्रिय पर होत असर ।।
१४१ मूत निकस से पहले छोड़। और न पड़ने दे तू ज़ोर ।।
१४२ स्तम्भवृत्ति भी प्राणायाम । सांस जिधर जाए, कर दो थाम ।।
१४३ कर केवल कुम्भक का अभ्यास । इससे हो अन्तः प्रकाश ।।
१४४ मूल बन्ध का फायदा एक । प्राण अपान को मिलता देख ।।
१४५ उड्डियान बन्ध का फिर क्या लाभ । जा प्राण अपान में सुषुम्णा सांझ ।।
१४६ सुषुम्णा में जब प्राण समावे । ध्यान समाधि दिशा होजावे ।।
१४७ यह कही बात बखाने की । योग में रुचि बढ़ाने की ।।
१४८ गुरु तो मार्ग शब्द बतायगा । अन्तर मार्ग नहीं दिखायगा ।।
१४९ बहुत करे तो कर आप दिखायगा । संस्कारी शिष्य तो समझ पायगा ।।
१५० पूर्व पुण्य ही समझावें । अन्तर मार्ग प्रभु स्वयं दिखावें ।।
१५१ दो तटों के बीच में बहुत है नद जल ।
तट जल न बने, पर बिन तट टिके न जल ।।
१५२ जल का धेय्य उपकार नहीं, परञ्च समुद्र मिलाप ।
तट ही ले जाते हैं, पर डरे ही रहते आप ।।
१५३ जल ही जल समा सके, मिट्टी हो स्वीकार ।
मिट्टी रक्षक जल की, है रक्षा बड़ा उपकार ।।
१५४ कर्म उपासना ज्ञान तीन से होता जीव उद्धार ।
कर्म ज्ञान दो तट हैं, उपासना जल मंझधार ।।
१५५ निष्काम कर्म से मन शुद्ध होवे शुद्ध अहंकार ।
बुद्धि शुद्ध करे ज्ञान विशुध्द और चित्त चिलकार ।।

१५६ ध्यान योग से मन चञ्चल, हो जावत इक तार।
अपना आप पहिचान सके, फिर पावे करतार॥
१५७ कर्म उपासना ज्ञान भी, जड़ चेतन आधार।
तीनों क्रिया जड़ रहें, कभु न होत सुधार॥
१५८ इन क्रियाओं के चिन्ह प्यारे, सुनो हो होश्यार।
जिस क्रिया में मम समावे, वह होती जड़ शुमार॥

१५९ सत्य दर्शन और सत् जगत में, मम देता अहम् विसार।
वही क्रिया चेतन है, करता. प्रभु स्वीकार॥

१६० करते कर्म न थके शरीर, लोग करें स्वीकार।
चित्त की शुध्दि प्रभु प्रसन्नता, जगत का हो उपकार॥
१६१ स्वार्थ प्रायण जो कर्म हैं, उनसे हो अहंकार।
अशुध्द ज्ञान अधीर कर, क्रोध करे भर मार॥
१६२ जड़ उपासना बहुत बुरी, देती दम्भ उभार।
चेत उपासना निर्भय अदीन करती खुद मुखतार॥

१६३ अविद्या, अस्मिता, राग द्वेष, अभिनिवेश चित्त चिलकार।
इन वृत्तियों के रोकन को कहते योग आधार॥
१६४ काम बसेरा आंख में, करे चित्त विकार।
अन्धा बनाए मनको, देवे ध्यान बिगाड़॥
१६५ क्रोध का वासा वाणी में, अकल को देता मार।
(बुद्धि) सिर में गरमी आचढ़े, ज्ञान पड़े मंझधार॥
१६६ लोभ पाप का बाप है, घ्राण इन्द्रिय पसार।
मीठी वाणी छल करे, बेईमान करे व्यवहार॥
१६७ मोह है माता अज्ञान की, करती बहुत प्यार।
मोह ममता मूढ़ बना, औसान को देती हार॥

१६८ सब शत्रु जो पांचों का गिना जाता सरदार।
अशुध्द माया ठगनी का, प्रधान वज़ीर अहंकार॥
१६९ गुप्त चर विभाग का, संशय बना सरदार।
छिपकर भेष बदल बुध्दि का बनता यार॥
१७० जमे विश्वास और प्रेम की तोड़ देता यह तार।
मन योग में जाने को, हो जाता बेकार॥
१७१ प्राणायाम जो कर न सकें, हों धर्म वृत्ति उपकार।
सन्त जन उनमें ध्यान बिठावें, त्रिकुटि लगातार॥
१७२ सन्त गुरू बल सङ्कल्प, अपना करते शिष्य आधार।
जो मनुष्यचित्त को ढीला करे, अर्पण करे विचार॥
१७३ ध्यान लगावे सहज से, अभ्यास करे घर बार।
चन्चल मन हाथ करे, होता समय दरकार॥
१७४ न हो सहायक गुरु बल, जे शिष्य कपट आधार।
ऐसा शिष्य पावे नहीं, आत्म दर्शन अधिकार॥
१७५ ध्यान दृढ़ हो जाने से, चल पड़ेगा नाद।
नाद चले दिन रात अनहत, मत कर डर विशाद॥
१७६ ब्रह्माण्ड कपल में धनञ्जय प्राण करे कुच्छ तिन ताल।
झांझ वजीरे बीन नफीरी, बजते संख घड़ियाल॥
१७७ गन्धर्व लोक में ध्यानी पहुँचे सुनेगा सोहं शब्द।
ओम् सोहं दिन रात सुने, रहता यह अब्द॥
१७८ मन वाणी से जब छूट गया, सुनते जप आनन्द।
अनहत शब्द में सुख विलीन, हो जावे बे सुध॥
१७९ तालु रन्ध्र से अमृत टपके, पीकर मस्त आनन्द।
इस अमृत रस से पाप वासनांए हो जांयगी मन्द॥
१८० जो जो दृढ़ बनता जाए, प्रज्ञा लोक को पाय।
प्रज्ञा से वैराग्य विषय, ब्रह्म प्रकाश को पाए॥

शुद्धि पत्र

पृष्ठ सं०	अशुद्ध	शुद्ध
प्राक्कथन ४ पृष्ठ	ाभग	भाग
प्रार्थना	निकतुना	निकेतुना
१०	घुल	धुल
१६	जावगी	जावेगी
२८	पूरुषार्थ	पुरुषार्थ
४२	प्रमाणों	परमाणुओं
४३	इता	इतना
५२	अपिनु	अपितु
५३	क करे	न करे
६३	समम	समय
६७	काय	क्या
६८	मुख	सुख
७३	वमस्कार	नमस्कार
७६	क्चिछेद	विच्छेद
८५	चुबक	चुम्बक
९३	नश्रतों	नक्षत्रों
१०२	वर्प	वर्ष
१०९	ह	हैं
११४	तत्सवितृर्रेण्यम	तत्सवितुर्वरेण्यम
१३९	जित्तासु	जिज्ञासु
१४३	पौघे	पौधे
१४३	उफेद	सफ़ेद
१४७	समाघि	समाधि
१७२	सदा बनाओ	सदभावनाओं

निवेदन

श्री महात्मा प्रभु आश्रित जी महाराज की पुस्तकें बहुत सुन्दर, सस्ती और अनुभव के आधार पर लिखी हुई हैं। अतः यह प्रकाशन बहुत सस्ता और सर्व साधारण के लिये बहुत लाभदायक है। यह पुस्तकें किसी आर्थिक लाभ के हेतु नहीं छपवाई जाती, अतः सब सज्जनों को इस पुण्य कार्य में भाग लेना चाहिये।

———

श्री महात्मा जी द्वारा रचित मुख्य मुख्य पुस्तकें

१. गायत्री सम्बन्धी—

गायत्री रहस्य—गायत्री की विषद सरल व्याख्या २॥), १॥)

मंत्र योग चारों भाग—गायत्री मंत्र द्वारा योगिक सिद्धियाँ ३॥।)

(प्राप्त करने के उपाय) ॥),१।),१),१)

प्रभु का स्वरूप १)

गायत्री कुसमाञ्जलि =)

नवराजा =)

२. यज्ञ सम्बन्धी—

यज्ञ रहस्य दोनों भाग ॥।), ॥।)